लाला देवराज जी

नी-सदन, मसूरी (यू० पी०)

'श्रद्धानन्द-साहित्य' की प्रस्तावित योजना :-

* निवेदन *

आशा है आप इस योजना को विशेष ध्यान से पढ़ेंगे। अपने इष्ट मित्रों को इसे सुनाने और पढ़ाने की कृपा भी करेंगे। यदि आप या आप के मित्र इस सम्बन्ध में कुछ अधिक जानना चाहें अथवा किसी प्रकार से कुछ सहयोग देना चाहें तो निम्नलिखित पते से पत्र-व्यवहार करें। आप के परामर्श, सूचना, सहायता और सहयोग की हमको नितान्त आवश्यकता है। हम उसका हार्दिक स्वागत करेंगे।

"अलङ्कार-बन्धु"
१६-२० चिरंजीलाल-बिल्डिंग्स
रोशनारा रोड (सब्जी मण्डी)
देहली।

—सत्यदेव विद्यालंकार

* ओ३म् *

'श्रद्धानन्द-साहित्य'

की

प्रस्तावित योजना

अमर-शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की जीवनी लिखते हुये मन में यह विचार पैदा हुआ था कि उनकी जीवनी को लेकर अभी बहुत-सा कार्य किया जा सकता है। यद्यपि प्रकाशकों ने उस जीवनी को 'पूर्ण, प्रामाणिक और विस्तृत' के विशेषणों के साथ प्रकाशित किया है और प्रायः सभी समाचार-पत्रों. पत्रिकाओं तथा विद्वज्जनों ने उसकी मुक्तकण्ठ से सराहना की है, तो भी उसकी अपूर्णता को दूर करके उसको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिये उससे कहीं अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। उस जीवनी की भूमिका में इस ओर संकेत किया गया था और आर्यसमाज को लक्ष्य करके उसमें कुछ पंक्तियां इस लिये लिखी गई थीं कि उस पर और उसके नाते आर्यसमाजियों पर

दिवंगत स्वामी जी का बहुत बड़ा ऋण है। उससे उऋण होने के लिये उनका यह कर्तव्य है कि वे हिन्दी-साहित्य में स्वामी जी के साहित्य को स्थिर बना कर उनके नाम को साहित्य के क्षेत्र में भी उसी प्रकार अमर बना दें, जिस प्रकार परम पुनीत बलिदान द्वारा इतिहास में उनका नाम अमर होगया है। आर्यसमाज ने महापुरुषों को जन्म देने की परम्परा को अपने प्रवर्तक त्रिकालदर्शी महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर अब तक कायम रक्खा है, किन्तु यह बड़े आश्चर्य और दुःख का विषय है कि उनके जीवनी-साहित्य के निर्माण की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। राजा राममोहन राय, श्रीयुत महादेव गोविन्द रानडे, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, देशबन्धु चितरंजन दास, स्वामी रामतीर्थ, परमहंस रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द सरीखे महापुरुषों के जीवनी-साहित्य को लेकर जो महान् कार्य किया गया और किया जा रहा है, उसकी तुलना में आर्यसमाज या आर्यसमाजियों की ओर से महर्षि दयानन्द सरस्वती, विद्वद्वर्य पं० गुरुदत्त जी, आर्यपथिक पण्डित लेखराम जी, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय जी, स्वर्गीय श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, अमर-शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी और स्त्री-शिक्षा के प्रवर्तक श्री देवराज जी आदि के सम्बन्ध में कुछ भी कार्य नहीं हुआ है। ये सब महानुभाव आर्यसमाज के विधाताओं में सर्वाग्रणी हैं, किन्तु फिर भी उनका जीवनी-साहित्य पैदा करने की आवश्यकता अनु-

भव नहीं की गई है। न वैसे साहित्य की आर्य जनता की ओर से इतनी अधिक मांग है और न आर्यसमाजी प्रकाशकों तथा लेखकों की उसके पैदा करने की ओर कुछ प्रवृत्ति है। भावी सन्तति में ज्ञान, उत्साह, स्फूर्ति, जागृति एवं चैतन्य पैदा करने वाले जीवनी-साहित्य की इस समय सब से अधिक आवश्यकता है। ऐसा ही साहित्य वीर-पूजा का निदर्शक है। जिस समाज अथवा जाति में अपने वीरों की पूजा, उनकी स्मृति की रक्षा और भावी सन्तति के सामने उनके आदर्श को उपस्थित करने का यत्न नहीं किया जाता, वह समाज या जाति जीवन के लिये आवश्यक स्फूर्ति के स्रोत को बंद करके जीवित रहने की आशा कैसे कर सकती है? अपने विधाताओं की अर्चना के लिये आवश्यक चिरस्थायी वीर-पूजा की ऐसी सामग्री के बिना आर्यसमाज के महोत्सवों की धूम-धाम धूप-दीप-नैवेद्य से खाली थाली हाथ में ले मन्दिर में आरती उतारने के समान है। वैदिक सिद्धान्तों और वैदिक ऋचाओं के अनुसार अपने जीवन में 'आर्यत्व' की प्रतिष्ठा करने वाले महापुरुषों की जीवनियों के साहित्य के बिना केवल सिद्धान्तों और ऋचाओं को लेकर लिखा गया साहित्य प्राण-शून्य देह और प्रकाशशून्य दीपक के सदृश है। इस लिये आर्य-समाज को ऐसे जीवनी-साहित्य को वैदिक-साहित्य का एक अंग मान कर वेद-प्रचार के समान ही उसके लिये भी प्रयत्नशील होना चाहिये। शिक्षा-प्रचार, समाज-सुधार, धार्मिक-जागृति,

अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दी-प्रसार, गुरुकुल-प्रणाली के पुनरुज्जीवन और वैदिक-साहित्य के अनुशीलन आदि के क्षेत्रों में आर्य-समाज ने जिस प्रकार पथप्रदर्शक का काम किया है, उसी प्रकार उसको ऐसे जीवनी साहित्य के निर्माण के महत्वपूर्ण कार्य में भी अवश्य ही पथप्रदर्शक बनना चाहिये।

हिन्दी में जीवनी-साहित्य का भयावह अभाव है। कथा-कहानियों, उपन्यासों, प्रारम्भिक शिक्षा-क्रम की पाठ्य पुस्तकों तथा पौराणिक धार्मिक-ग्रन्थों के समान सुन्दर, उपयोगी, शिक्षा-प्रद और मौलिक जीवनियां हिन्दी में प्रायः नहीं हैं। 'स्वामी-श्रद्धानन्द' ग्रन्थ की समालोचना करते हुए प्रायः सभी समाचार-पत्रों और मासिक पत्रिकाओं के सुयोग्य सम्पादकों ने हिन्दी के इस अभाव की विशेष रूप से चर्चा की है और दिवंगत स्वामी जी की जीवनी के समान अन्य महापुरुषों की जीवनियों के प्रकाशित करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। हिन्दी-भाषा-भाषी जनता विशेषतः हिन्दी भाषा के विद्वानों का यह कर्तव्य है कि वे हिन्दी के इस अभाव की पूर्ति करने का उद्योग करें। जनता में यदि ऐसे साहित्य की मांग पैदा हो जाय, तो लेखकों और प्रकाशकों को अपनी विद्वता, योग्यता, शक्ति तथा साधनों का उपयोग उसके पैदा करने के लिये अवश्य करना पड़े। इस प्रकार जनता का कर्तव्य इस सम्बन्ध में बिलकुल स्पष्ट है। वह इतना सुगम है कि सहज में उसका पालन किया जा सकता है।

दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्द जी सरीखे महापुरुष युग-निर्माता होते हैं। वे किसी विशेष सन्देश को लेकर संसार में प्रगट हुआ करते हैं। उनका कार्य समाज, जाति, सम्प्रदाय आदि की संकुचित सीमा को पार कर सारे देश तथा समस्त राष्ट्र में व्याप जाता है और उसके साथ साथ उनका व्यक्तित्व भी सर्वव्यापी बन जाता है। महापुरुषों की जीवनियां पराधीन राष्ट्र और पद-दलित देशवासियों में आशा का सञ्चार कर उनको प्रगतिशील बनाने वाले प्रकाशस्तम्भों की शृंखला होती हैं। उस शृंखला में स्वामी जी का दिव्य जीवन सूर्य के समान चमकता दीख पड़ता है। कौन-सा ऐसा क्षेत्र है, जिसमें उन्होंने अपने अलौकिक त्याग, अदम्य साहस, कठोर तपस्या, निस्सीम धैर्य, महान पुरुषार्थ, दृढ़ संकल्प, अटल विश्वास, एकनिष्ठ श्रद्धा और आदर्श आत्मोत्सर्ग का विलक्षण परिचय नहीं दिया है? विश्ववन्द्य महात्मा गांधी के नेतृत्व में देशवासियों ने १९२० में अहिंसात्मक असहयोग के जिस कार्यक्रम को राजनीतिक दृष्टि से अपनाया था, उस सब को लगभग ३०—४० वर्ष पहले आप अपने दैनिक जीवन के साधारण व्यवहार में परिणत कर चुके थे। 'स्वदेशी' को आप सार्वजनिक जीवन में आने से पहले अपना चुके थे। 'वकालत' को सार्वजनिक जीवन के लिये आपने सन् १८९१ में बाधक समझना शुरू कर दिया था और उसके दो-चार वर्ष बाद उसको तिलांजलि भी दे डाली थी। सरकार से स्वतन्त्र, अपनी संस्कृति

पर अधिष्ठित, स्वावलम्बी राष्ट्रीय शिक्षा का सूत्रपात आपने १८८६ में किया था) स्त्री-शिक्षा के ही नहीं किन्तु स्त्रियोंकी जागृति के व्यापक क्षेत्र में चहुंमुखी क्रांति का यशस्वी कार्य करने वाली 'कन्या-महाविद्यालय' जालन्धर सरीखी आदर्श संस्था की स्थापना स्त्री-शिक्षा के प्रवर्तक स्वनामधन्य स्वर्गीय श्री देवराज जी के साथ मिल कर तब की थी, जब कि स्त्री-शिक्षा की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था। फिर १८६६ में 'गुरुकुल-विश्वविद्यालय-कांगड़ी' की स्थापना कर उसको अपने एकाकी प्रयत्न द्वारा इतना सफल बना दिया कि ब्रिटिश-सरकार के भूत-पूर्व प्रधान-मन्त्री रैमसे मैकडानेल्ड तक ने उसका अवलोकन करने के बाद यह लिखा था कि "सन १८३५ के प्रसिद्ध लेख में लार्ड मैकाले के भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में सम्मति प्रगट करने के बाद उसके विरुद्ध यह पहिला ही प्रशस्त यत्न किया गया है। उस लेख के परिणामों से प्रायः सभी भारतवासी असन्तुष्ट हैं, किन्तु जहां तक मुझको मालूम है गुरुकुल के संस्थापकों के सिवा किसी और ने उस असन्तोष को कार्य में परिणत करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में नया परीक्षण नहीं किया है।" भारत की प्राचीनतम ब्रह्मचर्य-प्रधान गुरुकुल की राष्ट्रीय-शिक्षा-प्रणाली का पुनरुज्जीवन वास्तव में स्वामी जी का जीवन-कार्य है और भारतीय राष्ट्र को यही उनकी सब से बड़ी देन है। देश, जाति, राष्ट्र और समाज की गुरुकुल जो सेवा कर रह

जी के व्यापक व्यक्तित्व का कुछ आभास सहज में मिल जाता है। गुरुकुल की सम्पूर्ण शिक्षा का हिन्दी को माध्यम बना कर आपने १८९६ में हिन्दी को अपनाया था। फिर अपने पत्र 'सद्धर्म-प्रचारक' को, जो १७-१८ वर्षों से उर्दू में निकल रहा था, आपने १९०६ में एकाएक हिन्दी में निकालना शुरू कर दिया था। ऐसे हिन्दी-प्रेम के कारण आप १९०९ में भागलपुर में होने वाले अखिल-भारतवर्षीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के सम्मान से गौरवान्वित किये गये थे। शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी के अधिकार को स्थापित करने के साथ-साथ गुरुकुल ने भारतीय संस्कृति, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, दर्शन, वेद आदि के सम्बन्ध में भी सर्वसाधारण की मनोवृत्ति और विद्वानों के दृष्टिकोण को एकदम बदल दिया है। भारतीयता की दृष्टि से स्वामी जी का यह कार्य असाधारण है। राल्नेट एक्ट के विरोध में देश में राजनीतिक-आन्दोलन के जोर पकड़ने और महात्मा गांधी के सत्याग्रह की घोषणा करने पर उसको धर्मयुद्ध और महात्मा जी को देश की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति का प्रतिनिधि मान आपने उसमें सम्मिलित होना अपना कर्तव्य समझा। देहली के सत्याग्रह-आन्दोलन की घटनाओं को कौन भूल सकता है? घन्टाघर के नीचे गुरखों की नंगी तनी हुई किरचों के सामने छाती तान कर खड़ा होना, जामा-मसजिद के मिम्बर पर से भाषण देना, शहीदों की शव-यात्रा के पचास-पचास हजार के

जलूसों का नेतृत्व करना, गोली चलने के बाद मशीनगनों से घिरी हुई लाखों की उत्तेजित जनता पर अंगुली के एक ईशारे से नियन्त्रण रखना और देहली में राम-राज्य का सुनहरा दृश्य उपस्थित कर दिखाना — आपके दिव्य जीवन की कुछ ऐसी घटनायें हैं, जिनका उल्लेख देश के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में किया जायगा। फिर मार्शल ला की अन्धी हकूमत की मार से मूर्च्छित पंजाब में प्राण-संचार कर अमृतसर में कांग्रेस के असम्भव प्रतीत होने वाले अधिवेशन को सम्भव कर दिखाने वाले पुरुषार्थ की कहानी कैसे भुलाई जा सकती है ? कांग्रेस के मंच पर से हिन्दी में दिया जाने वाला वह पहिला भाषण था, जिसकी ध्वनि श्रोताओं के कानों में और प्रतिध्वनि देश के कोने-कोने में आज भी गूंज रही है और सदा गूंजती रहेगी। त्याग, तपस्या, चरित्र-निर्माण, स्वावलम्बी राष्ट्रीय शिक्षण, स्वदेशी-भाव-भाषा तथा सभ्यता और सब से बढ़ कर अस्पृश्यता-निवारण की आवश्यकता पर उस भाषण में कांग्रेस के ऊंचे आसन से सब से पहिली बार प्रकाश डाला गया था। वह मौलिक-भाषण उच्चता, पवित्रता, गम्भीरता और सचाई का नमूना था। स्वामी जी के व्यक्तित्व की छाप उस पर आदि से अन्त तक लगी हुई थी। असहयोग आन्दोलन के शुरू होने पर गुरुकुल एवं आर्यसमाज के कार्य से अलग हो और महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के साथ हुए मतभेद को सर्वथा भुला आपने फिर राजनीतिक क्षेत्र में

पदार्पण किया और सिक्खों के गुरुका बाग के सत्याग्रह के लिये जेल की कठोर यातना को उस वृद्धावस्था में स्वीकार किया, जिसमें मनुष्य एकान्त जीवन बिता कर केवल विश्राम करने का विचार किया करता है। उस समय गुरुकुल की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा 'आर्य प्रतिनिधि-सभा-पंजाब' के प्रधान श्री रामकृष्ण जी को आपने जो पत्र लिखा था, उससे मातृभूमि के उन्नत भविष्य में आपके दृढ़ विश्वास और देश की स्वतन्त्रता के लिये आपकी उग्रतम आकांक्षा का कुछ परिचय मिलता है। पर, आपकी यह धारणा थी कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिये बारह मास की अवधि नियत करना और पैंतीस करोड़ के लिये अहिंसात्मक रहने की कठोर शर्त लगाना उचित नहीं है। देश को शक्ति-सम्पन्न बनाने के लिये विधायक-कार्यक्रम तथा असहयोग की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार की बिना किसी शर्त के वैसे ही नितान्त आवश्यकता है और कांग्रेस के सत्याग्रही दल में सम्मिलित न होने वालों के अहिंसात्मक रहने की जिम्मेवारी अपने सिर पर लेने की आवश्यकता कांग्रेस को नहीं है। कुछ इस मतभेद के और कुछ असहयोग-आन्दोलन के मंद पड़ने के कारण आपने अपने को एकान्त-भाव से अछूतोद्धार के कार्य में तन्मय कर दिया। देहली के चारों ओर बसे हुए 'अस्पृश्य' कहे जाने वाले लोगों को कांग्रेस के प्रतिकूल वरगलाया जा रहा था और उनमें अमन-सभा का जोरदार प्रचार किया जा रहा था। उसका विरोध कर

आपने दलितोद्धार-सभा का जाल चारों ओर बिछा दिया। देहली से बम्बई, बम्बई से मद्रास, मद्रास से कलकत्ता तथा कलकत्ता से देहली के कई दौरे किये और कार्यकर्ताओं का जाल मद्रास के सुदूर प्रदेशों तक में फैला दिया। अस्पृश्यता निवारण की समस्या को लेकर कांग्रेस से निराश हो, जब आप 'हिन्दू-महासभा' की ओर झुके तो उसमें ऐसा प्राण-संचार किया कि 'शुद्धि-संगठन' को भारत-व्यापी आन्दोलन बना दिया। अन्त में, ७२ वर्ष की वृद्धावस्था में, बीमारियों से जीर्ण-शीर्ण स्वास्थ्य होने पर भी अन्तिम सांस तक कर्मशील जीवन बिताते हुए छाती पर गोलियां खा कर महान् बलिदान का जो अपूर्व दृश्य उपस्थित किया, वह योद्धा-सन्यासी के दिव्य जीवन की स्फूर्तिदायक कहानी से भी कहीं अधिक दिव्य और स्फूर्तिदायक है।

निश्चय ही ऐसा सर्वव्यापी चहुंमुखी जीवन सारे राष्ट्र की सम्पत्ति है। कुल, परिवार, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, समाज और प्रान्त की संकुचित सीमा के दायरे में उसको बन्द नहीं किया जा सकता। भावी संतति में आशा, उत्साह, श्रद्धा, आत्म-विश्वास, स्वाभिमान, स्फुर्ति, महत्वाकांक्षा और राष्ट्रीयता आदि सद्गुण पैदा करने के लिये ऐसे दिव्य जीवन का आदर्श उपस्थित करना हर एक राष्ट्रवासी का कर्तव्य है। 'साहित्य' उस का प्रधान-साधन है। हिन्दी-साहित्य में अमर-शहीद दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की स्मृति-रक्षा को स्थिर बनाने के

लिये उनके जीवनी-साहित्य को यथासम्भव पूर्ण बनाने की यह योजना देशवासियों के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित की जा रही है। हमारा यह विचार है कि गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालय के आगामी वार्षिकोत्सव तक देशवासियों के विचारों का इस सम्बन्ध में हम संग्रह करेंगे। स्वामी जी के व्यक्तित्व के गौरव को जानने और समझने वाले महानुभावों के उत्साह की हम परीक्षा करेंगे। उनके अनुयायियों और भक्तों की इच्छा और आकांक्षा को हम परखेंगे। इस महान् योजना के लिये आवश्यक खर्च के पूरा करने की सम्भावना का पता लगायेंगे। इसके लिये आवश्यक अन्य सामग्री तथा साधनों की हम जांच-पड़ताल करेंगे। सारांश यह है कि उसके लिए प्रारम्भिक तैयारी में हमने अपने को लगाने का अंतिम और दृढ़ निश्चय कर लिया है। अब उसकी पूर्ति देशवासियों के उत्साहपूर्ण सहयोग, स्वामी जी के प्रेमी जनों की उदारतापूर्ण सहायता और गुरुजनों तथा वृद्धजनों के कृपापूर्ण आशीर्वाद पर निर्भर करती है।

स्वामी श्रद्धानन्दजी का सम्पूर्ण जीवन एक 'मिशन' था, जिस की देश को उनके बाद और भी अधिक आवश्यकता है। उस 'मिशन' को साहित्यिक दृष्टि से जीवित बनाकर सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित करने की भावना से, दो-ढाई वर्ष के लम्बे विचार के बाद,

हम इस उद्योग में अपने को लगा रहे हैं। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इस शुभ-उद्योग में हम को देशवासियों की आन्तरिक शुभ-कामना, हार्दिक सहयोग और यथेष्ट सहायता से पूर्ण-सफलता प्राप्त होगी।

आर्यसमाज के संगठन के सब ढांचे का निर्माण श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ही किया है और उस में प्राण-प्रतिष्ठा भी आपने ही की थी। प्रतिनिधि सभा के प्रधान-पद को वर्षों तक सुशोभित कर वेद-प्रचार-निधि की स्थापना कर आर्यसमाज को प्रचार के कार्य में प्रवृत्त करने वाले आप ही थे। 'महात्माजी' के नाम से प्रसिद्ध होने से पहले आप 'प्रधानजी' के नाम से प्रसिद्ध थे। आर्यसमाज के समस्त कार्य का सर्वश्रेष्ठ परिणाम 'गुरुकुल' एकमात्र आप के परिश्रम का फल है। आर्य-सार्वदेशिक-सभा आप के वर्षों के निरन्तर आन्दोलन एवं प्रयत्न का परिणाम है। सुदूर प्रान्तों तथा विदेशों में भी आर्यसमाज के गौरव की पताका को आपने फहराया है और आप के महान बलिदान से आर्यसमाज को जो प्रतिष्ठा अनायास ही प्राप्त हुई है, वह उसके समस्त कार्य एवं प्रचार से प्राप्त हुई प्रतिष्ठा से भी कहीं अधिक है। आर्यसमाज और आर्यसमाजियों पर उनका विशेष ऋण है। साहित्य में उनकी स्मृति को स्थिर बना कर उस ऋण का कुछ भार हलका किया

जा सकता है। हम को पूरा भरोसा है कि आर्य जनता इस सम्बन्ध में अपने कर्तव्य-पालन में न चूकेगी और न कुछ ढील ही करेगी। उसका पूर्ण सहयोग और उदार सहायता हमको निश्चय ही प्राप्त होगी।

योजना की रूपरेखा

उद्देश्य—

(१) अमर-शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की स्मृति को साहित्य में स्थिर बनाना।

(२) उनसे सम्बन्ध रखने वाले साहित्य को संगृहीत करके उनके जीवनी साहित्य को यथासम्भव पूर्ण करना।

कार्य—

'श्रद्धानन्द-ग्रन्थ-माला' और 'श्रद्धानन्द-निबन्ध-माला' के नाम से दो मालाओं को प्रकाशित करने का विचार है।

'श्रद्धानन्द-ग्रन्थ-माला' में अभी तीन ग्रन्थ प्रकाशित किये जायेंगे, जो सब मिला कर कम से कम ३-३॥ हजार पृष्ठ के होंगे। 'श्रद्धानन्द-निबन्ध-माला' में लगभग डेढ़ हजार पृष्ठ का

साहित्य प्रकाशित किया जायगा। इस प्रकार कुल साहित्य लगभग पांच हजार पृष्ठों का होगा।

ग्रन्थमाला के ग्रन्थों में स्वामी जी का पत्र-व्यवहार, लेख तथा भाषण और उनके सम्बन्ध में दूसरों के संस्मरण दिये जायेंगे। निबन्धों में वह साहित्य प्रकाशित किया जायगा, जिस को ग्रन्थों में न देकर निबन्धों में प्रकाशित करना उचित समझा जायगा।

ग्रन्थ-माला का प्रत्येक ग्रन्थ लगभग एक हजार पृष्ठों का होगा और निबन्धमाला के निबन्ध लगभग सौ डेढ़-सौ पृष्ठों के होंगे। एक वर्ष में एक ग्रन्थ और प्रति तीन मास में एक निबन्ध प्रकाशित करने का विचार है।

स्वामी जी के भिन्न-भिन्न स्थितियों और समयों के, भिन्न-भिन्न समारोहों और अवसरों के सब चित्र भी संकलित किये जायेंगे। उनके सहकारियों और समकालीन नेताओं के चित्रों का संग्रह भी किया जायेगा। उन सब को ग्रन्थों और निबन्धों में प्रकाशित किया जायगा।

इस कार्य में यथेष्ट सफलता प्राप्त होने पर स्वामी जी की वर्तमान ६५० पृष्ठों की जीवनी को १००० पृष्ठों में और भी अधिक पूर्ण, प्रामाणिक और विस्तृत बना कर ग्रन्थमाला के चौथे ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने का भी विचार है।

अर्जुन प्रेस, श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

आर्य-जीवन-माला—२

लाला देवराज जी

स्त्री-शिक्षा के प्रवर्तक, मातृ-जाति के उद्धारक 'कन्या-महाविद्यालय' जालन्धर के संस्थापक, स्वर्गीय श्री देवराजजी का संक्षिप्त-जीवन-परिचय

—:—

लेखकः—

श्री सत्यदेव विद्यालंकार

भूमिका-लेखक—

सेकसरिया-पारितोषिक के प्रवर्त्तक

श्रीयुत सीतारामजी सेकसरिया

—:—

दिसम्बर १९३५] [मूल्य पांच आना

प्रकाशक :—

श्रीयुत द्वारिकाप्रसाद जी सेवक

सरस्वती-सदन

मसूरी (यू० पी०)

**

*

मुद्रक :—

अर्जुन इलैक्ट्रिक प्रिंटिंग प्रेस,

देहली ।

❀ भूमिका ❀

पूज्य लाला देवराज जी के इस छोटे से जीवन चरित्र की भूमिका लिखने के लिये भाई सत्यदेव जी ने जब मुझ से कहा, तब मैं संकोच में इसलिये पड़ गया कि न मैं साहित्य सेवी हूं न लेखक। उन्होंने जब लाला जी के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा और मातृ-जाति के प्रति मेरी पूजा की भावना के नाम पर आग्रह किया, तब मुझे झुकना पड़ा और मैंने यह सोचा कि इस प्रकार पूज्य लाला जी के प्रति मुझे यह छोटी-सी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का अवसर प्राप्त हो जायगा।

प्रस्तुत पुस्तक लाला देवराज जी जैसे महापुरुष का जीवन-चरित्र तो नहीं, पर उनके जीवन की कुछ घटनाओं की एक तालिका सरीखी है। जिसने अपना अधिकांश जीवन अर्थात् पचास वर्ष का दीर्घ-समय मातृजाति के उत्थान में लगाया है और जिसमें उन्हें कितनी ही बाधा, विपत्ति तथा संघर्षों का सामना करना पड़ा है, उस महापुरुष की पूरी जीवनी एक बृहद् पुस्तक में भी नहीं समा सकती। फिर भी इस छोटी सी पुस्तिका में लाला जी के जीवन की कुछ घटनाओं का बड़ी रोचक और प्रभावपूर्ण भाषा में संकलन किया गया है। मातृ-जाति के सेवकों

के लिये ही नहीं, बल्कि सार्वजनिक सेवा की वृत्ति रखने वाले सभी सेवकों के लिये यह मार्ग प्रदर्शक और उनके जीवन में साहस और स्फूर्ति पैदा करने वाली हो सकती है।

लाला देवराज जी एक धनी परिवार में जन्मे थे। वे चाहते तो बड़े आराम की जिन्दगी बिता सकते थे। पर, वे एक विशेष विभूति थे, उन्होंने निजू सुख और मान-प्रतिष्ठा को अपना ध्येय नहीं बनाया। समाज के उत्पीड़ित और उपेक्षित अंग की सेवा और उत्थान ही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। बड़े बड़े प्रलो-भन और विघ्न आने पर भी वे अपने निश्चित मार्ग से एक पग भी नहीं डिगे।

लाहौर कांग्रेस के अवसर पर मैं उनके दर्शनों के लिये गया और सिर्फ डेढ़ दिन उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इतने काल में ही मुझे जान पड़ा कि मुझ पर वह बड़ी कृपा कर रहे हैं। स्वभावतः अपने जीवन की कई घटनायें सुना गये और कांग्रेस-सम्बन्धी बातचीत के सिलसिले में कहने लगे कि देश की स्वतन्त्रता के यज्ञ में सब से अधिक बलिदान कराने वाली इस संस्था की सेवा करने की मेरी भी इच्छा होती है और कभी कभी मन व्याकुल हो उठता है। फिर सोचता हूं तो अन्तरात्मा से यह आवाज निकलती है कि तुम्हें तो उस विश्व-नियन्ता प्रभु ने मातृ-जाति की सेवा के लिये ही सिरजा है।

यही मुझे स्वधर्म ज्ञान पड़ता है। जालन्धर कन्या-महाविद्यालय की स्थापना और उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयों की चर्चा करते हुए एक अद्भुत-सी घटना सुना गये। ईश्वर को जिनके द्वारा जो काम कराना होता है, उन्हें वह निराशा के समय खास घटनाओं द्वारा बल दिया करता है। वैसी ही वह घटना थी। आप इस जीवन-चरित्र में पढ़ेंगे कि तीन बार विद्यालय खुला और बन्द हुआ, फिर चौथी बार भी कम कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। उनका जिक्र करते हुए लाला जी ने बतलाया कि एक दिन मैं एकान्त में बैठा सोच रहा था कि क्या समाज का यह आधा भाग यों ही गिरी हुई हालत में पड़ा रहेगा ? क्या इसकी वर्तमान दशा बदलेगी नहीं ? आज हमारे पराधीन देश में स्त्रियों की दुर्दशा का अन्त नहीं है। खुले आम स्त्रियां बेची जाती हैं, घरों से निकाली जाती हैं, पतियों और पुत्रों तक से पीटी जाती हैं, नृशंस पुरुषों द्वारा उन का हरण किया जाता है और उन पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जाते हैं। समाज में उनका कोई स्वत्व और अधिकार नहीं है। उनका निजका व्यक्तित्व नहीं है। वे पुरुषों की इच्छा की गुलाम और दासियां हैं। कल जो घर की रानी कही जाती थीं और स्वामिनी समझी जाती थीं, आज पति के मर जाने पर वह भिखारिन बन जाती हैं। इन सब का क्या कारण है? इसी सोच-विचार में डूबा हुआ कुछ घबरा भी रहा था कि उसी समय

एक आदमी ने आकर कहा कि अमुक सज्जन—लाला जी ने मुझे उनका नाम बतलाया था पर मैं भूल गया — आप को बुला रहे हैं। रात को ६ बजे के करीब मैं उनके यहां गया। उन्होंने नमस्ते करने के बाद कहा—लाला जी ! मेरा यह मकान आप विद्यालय के लिये ले लीजिये। मैंने पूछा ऐसी क्या बात है? उन्होंने कहा कि यह मकान मैं अपनी लड़की के कहने से आपके विद्यालय को दान कर चुका हूं। मैं विचार में पड़ गया कि वे क्या बातें कर रहे हैं? उन्होंने पूरा किस्सा सुनाते हुए बताया कि उनकी लड़की विद्यालय में पढ़ने जाया करती है। उसने वहां आप से कुछ भजन सीखे थे जो उन्हें सुनाये। इस पर प्रसन्न होकर उन्होंने लड़की से कहा कि बोलो तुम्हें क्या चाहिये, जो चीज मांगो वह दें। तो उस नौ वर्ष की बालिका ने कहा कि पिता जी आप मेरी चाही हुई चीज देना चाहते हों,तो हम लोगों का यह मकान विद्यालय को दे दीजिये, हमारे विद्यालय के पास अपना मकान नहीं है। इस पर मैंने यह मकान आप के विद्यालय को देने का निश्चय कर लिया है। कल ही वकील के यहां चल कर लिखा-पढ़ी करा लीजिये। मैंने कहा आप भी क्या बातें करते हैं? क्या इतना बड़ा मकान यों ही लड़की के कहने से दिया जाया करता है? परन्तु संकल्प कर चुके थे। उन्होंने वह मकान विद्यालय के नाम कर दिया। संयोगवश लिखा-पढ़ी करने के १५ दिन बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया। यदि वह

इस काम में थोड़ी भी शिथिलता करते तो आज यह घटना तुम्हें सुनाने को न रहती। मुझे उस समय मालूम हुआ और मेरा पक्का विश्वास हो गया कि मैं कुछ नहीं हूं। वह सारे जग को नचाने वाला नटराज ही सब कुछ करा रहा है, मैं तो निमित्त-मात्र हूं। मुझे इधर उधर झांके बिना उसकी इच्छा में अपनी इच्छा मिला कर चलना चाहिये। फिर भी समय-समय पर मन डांवाडोल होता है। परन्तु मुझे तुरन्त ही याद आ जाता है कि यह तो होने ही वाला है और होगा ही, मैं क्यों असमंजस में पड़ता हूं? मुझे पूरा विश्वास है कि देश की प्रधान शक्ति मातृ-शक्ति ही है। देश को, समाज को स्वतन्त्र और सुखी बनाने में इनका ही पूरा हाथ होगा। इन्हीं की सेवा समाज की सबसे बड़ी और सच्ची सेवा है। मुझे इसमें बहुत बड़ा विश्वास है।"
आप इस पुस्तक में पढ़ेंगे कि सन् १९३० का आन्दोलन शुरू हुआ और हमारी मातायें उस यज्ञ में अपनी प्रचंड आहुति डालने के लिये अग्रसर हुईं, तो उनको कितनी खुशी, कितनी शांति और कितनी शक्ति मिली थी? वे माताओं अर्थात् स्त्रीजाति के द्वारा सम्पूर्ण कार्य होता देखना चाहते थे। मातायें उनकी उपास्य देवियां थीं। उनके जीवन की इतनी घटनायें हैं कि भूमिका क्या एक बड़ी पुस्तक में भी लिखना कठिन है।

वे एक व्यक्ति के रूप में मातृ-जाति के लिये संस्था थे। वे अपने जीवन के शुरू से इस पूजा में लगे और अन्त तक लगे

रहे। इस पूजा में वे सफल पुजारी रहे। इसमें उन्होंने अपने इष्ट का दर्शन किया और उसके मधुर वरदान का भोग किया। आज का जालन्धर-कन्या-महाविद्यालय तथा उस विद्यालय से निकली हुई स्नातिकायें तथा अन्य लड़कियां जो कुछ देश और समाज का काम कर रही हैं या भविष्य में करेंगी वे पूज्य लाला जी की स्वर्गस्थ आत्मा को सुख पहुंचावेंगी, शांति देंगी और अपने ऋण का एक छोटा-सा हिस्सा अदा करेंगी। आज स्त्रियों के आन्दोलन में भाग लेने वालों और स्त्रियों की उन्नति की बात करने वालों की कमी नहीं है, पर उन्होंने जिस समय काम शुरू किया था वह 'ऊसर बये बीज फल यथा' का समय था। उनका अथक परिश्रम, अगाध श्रद्धा, अविचल लगन, महान त्याग और अद्वितीय तपश्चर्या ने सचमुच ऊसर में हरे-भरे खेत लहलहा दिये हैं। आज सम्पूर्ण स्त्री-समाज तथा उसके सेवक उनके ऋणी हैं और ऐसे ऋणी हैं कि उससे मुक्त नहीं हो सकते। ऐसी महान आत्मा के जीवन-चरित्र की भूमिका मैंने "स्वांतःसुखाय" लिखी है। मुझे आशा है कि इस पुस्तक को पढ़ कर पाठक मातृजाति के उत्थान के यत्न में सहायक होंगे।

जसीडीह
११-१२-३५

—सीताराम सेकसरिया

परिचय

यह एक आकस्मिक दुर्घटना थी कि देहली में दो मास तक साधारण बीमार रहने के बाद कुछ सम्भल कर वायु-परिवर्तन करने के विचार से जनवरी के मध्य में जालन्धर जाना हुआ और वहां पहुंचते ही एकाएक ऐसी भयानक बीमारी का शिकार हो गया कि इस जीवन की कोई आशा शेष नहीं रही थी। डाक्टरों को भी उस बीमारी ने निराश और परास्त कर दिया था। ११७ पौण्ड से देह का वजन ७० पौंड रह गया था। धन्य हैं जालन्धर के वैद्य बालकनाथ जी, जिन्होंने डाक्टरों की एक न सुनी। जालन्धर के सब डाक्टरों के प्रतिकूल रहने पर भी आपने अपनी चिकित्सा पर भरोसा रखा, बीमारी को परास्त कर बिस्तर पर बिठा दिया और कुछ दिन बाद खड़ा कर दिया। खड़ा होने पर देखा कि जमीन पर पैर रख चलना तक एकदम भूल गया था। बीमारी की वह असमर्थता बीमारी के बाद पुनर्जीवन प्राप्त करने की बाल्यावस्था थी। उन्हीं दिनों में १५ अप्रैल को पिता जी ने छोटे भाई के बालकों का नामकरण और मुण्डन संस्कार करवाये थे। स्वर्गीय श्री देवराज जी ने भी उस मांगलिक अवसर पर पधार कर घर को

पवित्र किया था। क्या पता था कि वह उनके अन्तिम दर्शन थे ? दो-तीन दिन बाद फिर मिलना तय हुआ था। पर दो ही दिन बाद बड़ी सवेरे बिस्तर से उठते न-उठते पहिली आवाज यह सुन पड़ी कि 'चाचा जी चल बसे। लाला देवराज जी का देहावसान हो गया।' सारे शहर में मातम छा गया। शोक की काली घटायें चारों ओर घिर गयीं। बड़े बूढ़े तो क्या, छोटी छोटी लड़कियाँ भी अश्रुपूर्ण नेत्रों में उनके अन्तिम दर्शनों के लिये दौड़ पड़ीं। मेरे लिये घर से बाहिर निकलना कठिन था। अन्तिम दर्शनों की लालसा मन की मन में रह गयी। पर, अन्तिम मुलाकात का चित्र हृदय पर आज तक अंकित है और सदा अंकित रहेगा। उसी दिन उनकी विस्तृत जीवनी लिखने का मन में विचार पैदा हुआ था। पर, उसकी पूर्ति एकमात्र लेखक पर निर्भर नहीं थी। उसके लिये उद्योग जारी है। यदि उन महानुभावों की कृपा से, जिनके हाथों में यह काम है, उस दिन पैदा हुये विचार को मूर्तरूप देने का सुयोग प्राप्त हुआ तो लेखक उसको अपना अहोभाग समझेगा।

प्रस्तुत पुस्तिका जीवनी नहीं है, केवल संक्षिप्त परिचय है, किन्तु है उसी विचार का परिणाम। उसी विचार से प्रेरित होकर कलकत्ता के मासिक 'विश्वमित्र' के लिये श्री देवराज जी के सम्बन्ध में एक लेख लिखा था, जिसके लिये सम्पादक-महो-

दय ने कुछ कांट-छांट करने के बाद भी नौ-दस पृष्ठ का लम्बा स्थान दे देने की कृपा की थी। कुछ मित्रों ने उसको पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करने का आग्रह किया। उसी लेख को कुछ घटा-बढ़ा कर इस रूप में प्रकाशित किया गया है। कुछ मित्रों की प्रस्तावना और कलकत्ता के समाज-सेवी तथा राष्ट्र-प्रेमी श्री सीताराम जी सेकसरिया की उदारतापूर्ण प्रेरणा का इसको परिणाम समझना चाहिये। श्री सीताराम जी सेकसरिया साहित्य-सेवी नहीं हैं, किन्तु साहित्य-प्रेमी जरूर हैं। जिस ध्येय एवं आदर्श की पूर्ति में स्वर्गीय लाला जी ने अपने जीवन को एक-निष्ठ होकर लगाया था, वह आपके हृदय में और देह के रोम-रोम में समाया हुआ है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से स्त्री-लेखिकाओं को प्रति वर्ष दिया जाने वाला 'सेकसरिया-पारितोषक' आपकी उदारता का परिचायक और ऊपर के कथन का समर्थक है। अपने पिछड़े हुए मारवाड़ी-समाज में 'कन्या-महाविद्यालय" सरीखी संस्था को देखने के लिये आप अत्यन्त लालायित हैं।

कलकत्ते के मारवाड़ी-विद्यालय की सेवा में आप इसी लालसा से लगे रहते हैं। महिलाओं की जागृति एवं प्रगति के आप अन्यतम समर्थक हैं। अधिक प्रसन्नता की बात तो यह है कि आपकी सुयोग्य एवं सुशीला पत्नी श्रीमती भगवानदेवीजी भी ऐसे

कार्यों में आपसे सदा आगे रहती हैं। श्री देवराज जी के स्वर्गवास के बाद समाचार पत्रों में बहुत से लेख निकले थे। आपका लिखा हुआ लेख सबसे अधिक भावपूर्ण, हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी था। आपके सक्रिय जीवन और श्री देवराज जी के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति देखकर आपसे इस परिचय की भूमिका लिखने की प्रार्थना की गई थी। असमर्थता प्रगट करने पर भी आपने उसको स्वीकार कर इस छोटी-सी पुस्तिका के प्रकाशन करने के यत्न को सफल किया है, जिसके लिये लेखक आपका अत्यन्त आभारी है।

यह सचमुच दुःख की बात है कि हिन्दी में जीवनी-साहित्य की भयावह कमी है। उपदेशप्रद, शिक्षा-पूर्ण, सुन्दर, प्रामाणिक और विस्तृत जीवनियों के लिखने की वैसी आवश्यकता ही अनुभव नहीं की जाती। आश्चर्य तो यह है कि जिन महापुरुषों ने अपने जीवन का होम करके सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना की है, वे भी उनके स्वर्गवास के बाद उनकी ऐसी जीवनी प्रकाशित करने की आवश्यकता अनुभव नहीं करतीं। आर्यसमाज के लिये तो यह भयानक लज्जास्पद लांछन है कि उसने जिन महापुरुषों को जन्म दिया है, उनकी स्मृति को साहित्य में कायम रखने का कुछ भी उद्योग नहीं किया जाता है। जालन्धर-आर्यसमाज पर स्वर्गीय श्री देवराज जी और दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्द जी

का जो ऋण है, उस की अदायगी क्या उसको इस रूप में नहीं करनी चाहिये ? आर्य-प्रतिनिधि-सभा-पंजाब का हजारों रुपया स्याही और कागज़ पर खर्च होता है। क्या कुछ रुपए इस कार्य में नहीं लगाये जा सकते ? गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालय और कन्या-महाविद्यालय का क्या अपने संस्थापकों के प्रति इस सम्बंध में कुछ भी कर्तव्य नहीं है ? क्या आर्यसमाज को इस लाञ्छन को दूर करने का उद्योग नहीं करना चाहिये ? यह नहीं भूलना चाहिये कि वेद के आदेशानुसार अपने जीवन में आर्यत्व की प्रतिष्ठा करने वाले महापुरुषों का जीवनी-साहित्य जनता को प्रदान करना भी वेद-प्रचार का एक अंग है। सचमुच यह सन्तोष की बात है कि कन्या महाविद्यालय की प्रबन्ध कारिणी सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और उसने श्री देवराजजी की जीवनी प्रकाशित करने का निश्चय किया है। यह आशा रखनी चाहिये कि इस निश्चय के अनुसार एक सुन्दर जीवनी शीघ्र ही हिन्दी जनता के सामने उपस्थित की जायगी। उसके उपस्थित करने में कन्या-महाविद्यालय की ओर से विलम्ब नहीं किया जायगा और उस को सुन्दर, पूर्ण, प्रमाणिक तथा विस्तृत बनाने में कोई कमी नहीं रहने दी जायगी।

यदि इस परिचय से श्री देवराज के सद्गुणों का आभास पाकर किसी हृदय में दीन-हीन तथा पराधीन अवस्था में पड़ी

हुई मातृजाति के उत्थान की भावना कुछ थोड़ी-सी भी पैदा हुई, तो निश्चय ही इसके लिखने और प्रकाशित करने का यत्न सफल हो जायगा।

गुरुकुल-कांगड़ी
१ दिसम्बर १९३५

—सत्यदेव विद्यालंकार

दो शब्द

आर्य-जीवन-माला में यह दूसरी पुस्तिका स्वर्गीय श्री देवराज जी का जीवन-परिचय प्रकाशित करने का सुयोग प्राप्त कर हम अपने को धन्य मानते हैं। आर्य-पुरुषों के व्यक्तिगत जीवन मे जिस श्रद्धा, निष्ठा तथा कर्तव्य-परायणता को हम जगाना चाहते हैं, श्री देवराज जी का जीवन उसके लिये आदर्श है और आर्यसमाज को संस्था के रूप में जिस आचार-प्रधान-धर्म के प्रचार करने में हम लगाना चाहते हैं, कन्या-महाविद्यालय द्वारा पचास वर्षों तक उन्होंने उसका निरन्तर प्रचार किया था। आशा है यह छोटी-सी पुस्तिका हमारी इस इच्छा-पूर्ति में सहायक होगी और आर्य जीवन-माला के प्रकाशित करने की हमारी आकांक्षा को कुछ न-कुछ सफल बनायेगी।

पंजाब की प्रतिनिधिसभा की स्वर्ण-जयन्ती पर हम इस को प्रकाशित कर रहे थे। इस लिये बहुत जल्दी और बहुत गड़बड़ में इस की छपाई हुई है, जो अत्यन्त असमाधानकारक, असन्तोषजनक और निराशापूर्ण है। असुविधा उठाकर भी हम इसको सुन्दर तथा आकर्षक नहीं बना सके। पाठकों से अपनी इस विवशता के लिये हम कर-बद्ध क्षमा-प्रार्थी हैं और

उन को विश्वास दिलाते हैं कि माला की अन्य पुस्तकों को हम अधिक सुन्दर तथा आकर्षक रूप में निकालेंगे और उनमें पाठकों को ऐसी शिकायत होने का अवसर नहीं रहने देंगे।

आर्य-जनता की सहायता, सहानुभूति और सहयोग के भरोसे हम ने आर्य-जीवन-माला का प्रकाशन शुरू किया है। हमको विश्वास है कि वह हम को यथेष्ट परिणाम में प्राप्त होगा।

"सरस्वती-सदन"
मसूरी २०—१२—३५

आर्य-जनता का सेवक—
द्वारिकाप्रसाद "सेवक"

१.

आदर्श जीवन

वेद का आदेश है कि मनुष्य अपनी आयु को कर्म करते हुये ही पूरा करने की इच्छा करे। कर्मशील जीवन बिताना वैदिक-धर्म का आदर्श है। आर्यसमाज इसी का उपदेश करता है। आर्य-जीवन के इस मर्म को जिन आर्य महापुरुषों ने समझा है, उन्होंने जाति, समाज, देश किंवा राष्ट्र की सेवा करते हुये इस जीवन को पूरा किया है। आर्यसमाज को यह गौरव प्राप्त है कि उसने अपने संस्थापक के समय से लेकर ऐसे महा-पुरुषों को जन्म देने की परम्परा को निरन्तर जारी रक्खा है। त्रिकाल-

दर्शी महर्षि दयानन्द सरस्वती के बाद पं० लेखराम जी, पं० गुरुदत्त जी, पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय जी, अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वनामधन्य लाला देवराज जी और स्वर्गीय श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा आदि को जन्म देकर आर्य समाज ने अपने जन्म को सफल, अपने अस्तित्व को सार्थक और अपने नाम को सदा के लिये अमर बना लिया है। हमारे चरित्रनायक स्वर्गीय श्री लाला देवराज जी एकमात्र आर्यसमाज की उपज थे। आर्यसमाज की शिक्षा, संगति, लगन और धुन ने उनको अपनी सुध-बुध भुला कर महापुरुषके उस ऊंचे आसन पर ले जा बिठाया था, जिस पर पहुँचने के बाद साधारण से साधारण मनुष्य भी अपना, अपने घर-परिवार या समाज का न रह कर देश जाति एवं राष्ट्र का बन जाता है और उसके उसी जीवन से उनके इतिहास का निर्माण होता है। किसी भी देश के राष्ट्रीय-इतिहास के अध्याय, पर्व या कांड ऐसे महापुरुषोंकी ही जीवनियां होती हैं। स्वर्गीय देवराज जी की जीवनी के रूप में देश के सार्वजनिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के एक अध्याय का परिचय सहज में प्राप्त किया जा सकता है। उनका जीवन वास्तविक, आदर्श महान्, दृष्टि दिव्य, विचार उदार और कार्य ठोस था।

महापुरुषों का जीवन सब घर को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान होता है। दीपक घर के अन्धकार को मिटाने के

लिये अपने अस्तित्व को मिटा देता है। तेल और बत्ती धीरे-धीरे बराबर जलते रहते हैं और इस प्रकार अपने को मिटाते हुये संसार के अन्धकार को दूर करने का वे काम करते रहते हैं। महापुरुष भी इसी प्रकार तिल-तिल करके अपने जीवन को देश, जाति एवं राष्ट्र के लिये मिटा देते हैं। परोपकार उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता है। त्याग, आत्मोत्सर्ग और बलिदान के बिना परोपकार सम्भव नहीं है। अपने सुस्वादु फलों से संसार को तृप्त करने वाले वृक्ष दूसरों के लिये ही फलते-फूलते हैं। अपने शीतल जल से प्यासों को शांति पहुंचाने वाली नदियाँ दूसरों के लिये ही बहती रहती हैं। अपने जल की अमृत वर्षा से खेतों का सिंचन करने वाले बादलों ने कब उन खेतों के अनाज का भोग लगाया होता है? धन्य हैं वे महापुरुष जो इसी प्रकार दूसरों के लिये पैदा होते, जीते, और मरते हैं। स्वर्गीय देवराज जी अपने देशवासियों के लिये ही पैदा हुये थे आजन्म उन्होंने उनकी सेवा के व्रत का सतत पालन किया था और अन्त में उस सेवा की वेदी पर ही आत्मोत्सर्ग किया।

परिवार

जालन्धर का सोंधी परिवार परम भाग्यशाली है, जिस को एक ही पीढ़ी में इतने महापुरुषों को एक साथ जन्म देने का अहोभाग्य प्राप्त है। स्वर्गीय रायजादा भक्तराम जी, स्वर्गीय

लाला देवराज जी और उन दोनों के छोटे भाई सुप्रसिद्ध राष्ट्रवादी एवं कांग्रेसी-नेता रायजादा हंसराज जी एम० एल० ए० ने इस घराने में जन्म लेकर अपनी अमर-कीर्ति से इसको भी अमर बना दिया है। स्वनामधन्य लाला मुंशीराम जी का, जिन्होंने बाद में महात्मा मुंशीराम और फिर श्रद्धानन्द सन्यासी होकर अमर-शहीद के पद को प्राप्त किया है, शुभ विवाह इसी परिवार में लाला देवराज जी की बहन के साथ हुआ था। इस प्रकार इस परिवार ने एक साथ चार महापुरुषों को पैदा करने का यश सम्पादन किया है।

आर्यसमाज की परम्परा

सोंधी परिवार से अधिक धन्य है आर्यसमाज, जिसकी परम्परा ही ऐसे महापुरुषों को जन्म देने की रही है। सोंधी परिवार में कितने ही व्यक्ति पैदा हुये और होते रहेंगे, पर उनको कौन जानता है? यदि उक्त महापुरुषों पर आर्यसमाज की शिक्षा-दीक्षा का रंग न चढ़ता और वे उसके पीछे दीवाने होकर अपने माता-पिता तथा घर वालों की इच्छा के विरुद्ध आर्यसमाज में दीक्षित होकर सेवा के कर्मशील जीवन को न अपनाते, तो आज उनको भी कौन जानता और कौन उनका नाम लेकर सोंधी-परिवार को याद करता? उस समय आर्य-समाज में चुम्बक-का-सा आकर्षण था। वह पारसमणि के

समान था, जिसमें लोहे को सोना बनाने की शक्ति थी। जो संगठन या संस्था चहुंमुखी क्रांति का स्पष्ट ध्येय लेकर ऊंचा सिर उठा कर खड़ी हुई थी, उसमें ऐसी शक्ति का होना स्वाभाविक था। जब तक उसमें यह स्वभाव-सिद्ध शक्ति बनी रही, तब तक महापुरुषों को जन्म देने की उसकी परम्परा कायम रही। उसके नष्ट हो जाने पर उसमें अकर्मण्यता छा गई और उसकी वह परम्परा टूट गई।

तीनों भाई तीन रत्न

स्वर्गीय श्री शालिग्रामजी जालन्धर के नामी रईस थे। उनका घराना बहुत धनी, सम्पन्न और समृद्धिशाली था। वे आर्यसमाजी नहीं थे और स्वयं इतने विद्या-व्यसनी भी नहीं थे। पर, बच्चों को ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलाने का उन्होंने यत्न किया। सम्भवतः इसी का परिणाम था कि उनकी सन्तान इतनी विद्या-व्यसनी और ऐसी 'कट्टर' आर्यसमाजी बन गई कि शिक्षा और आर्यसमाज के दायरे में ही नहीं किन्तु उसके बाहर भी वह अपने नाम और काम की अमिट मोहर लगा गई। रायजादा भक्तरामजी का वकालत में सारे पंजाब में पहिला स्थान था। वे सार्वजनिक जीवन में सामने नहीं आये, किन्तु फिर भी जालन्धर और पंजाब में अपने समय में वह एक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति थे। जालन्धर के तो वे कभी 'अनक्राउन्ड किंग'

(बेताज का बादशाह) थे। जानने वालों को पता है कि अमर-शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी और स्वर्गीय लाला देवराजजी को सार्वजनिक जीवन में जिन अन्तरंग मित्रों का विशेष सहारा था, उनमें भक्तराम जी भी अन्यतम थे। परमात्मा और आत्मा के बाद वे दोनों जिन पर भरोसा रखते थे, वे भक्तरामजी थे। श्री भक्तरामजी के समान ही श्री हंसराज जी भी इस समय अपने शहर, जिले और प्रान्त में, विशेषतः राष्ट्रीय सार्वजनिक जीवन में, एक शक्तिशाली व्यक्ति हैं। उन्होंने देश के लिये त्याग किया है और महात्मा गाँधी के असहयोग के कठोर मार्ग का अनुसरण करके कष्ट-सहन का भी यथेष्ट परिचय दिया है। स्वर्गीय लाला देवराजजी का नाम तो सदा ही अभिमान के साथ लिया जाता रहेगा। तीनों भाइयों को अपने परिवार के तीन रत्न समझना चाहिये।

मित्र-मण्डली

किसी शुभ भावना और ऊँचे आदर्श से प्रेरित होकर इकट्ठी हुई मित्र-मण्डली किस प्रकार आत्मोन्नति और जीवनके विकास में सहायक होती है, उसका ज्वलन्त उदाहरण भक्तरामजी, बालक-रामजी, मुंशीरामजी और देवराजजी आदि की मित्र-मण्डली है। इस मित्र-मण्डली की नींव उसके युवक सदस्यों ने अपने विद्यार्थी-जीवन में जालन्धर में ही डाल ली थी। उसकी एक शाखा

लाहौर में तब अपने आप खुल गई थी, जब जालन्धर की मण्डली के कुछ सदस्य कालेज की तथा कानून की शिक्षा ग्रहण करने के लिये वहां गये थे और वहां रहने लगे थे। दोनों स्थानों की उस मित्र-मण्डली ने कुछ समय बाद आर्यसमाज में प्रवेश किया था, किन्तु प्रवेश करने के बाद दोनों स्थानों पर वह शक्ति का पुंज साबित हुई। निस्सन्देह, मण्डली के सदस्यों के जीवन में आर्य-समाज के सहवास, शिक्षा और उपदेश से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि आर्यसमाज को सुसंगठित और शक्ति-सम्पन्न बनाकर वर्तमान उन्नत अवस्था में पहुंचाने का विशेष श्रेय भी उन को ही प्राप्त है। लाहौर में इस मित्र-मण्डली ने आर्य जीवन को उन्नत, कार्यशील और पुष्ट बनाने का जो सराहनीय कार्य किया था, उस का सम्बन्ध चरित्र-नायक की उज्ज्वल जीवनी के साथ इतना नहीं है, जितना कि दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्दजी की दिव्य जीवनी के साथ है। जालन्धर का आर्यसमाज एकमात्र जालन्धर की इस मित्र-मण्डली के शुभ उद्योग का सुपरिणाम है। वैसे पंजाब की समस्त आर्यसमाजों के लिये भी उसने कुछ कम काम नहीं किया है। उस का उल्लेख सदा आर्यसमाज के इतिहास में गौरव के साथ किया जाता रहेगा। उन दिनों में जालन्धर का आर्यसमाज पञ्जाब के सभी आर्यसमाजों के लिये आदर्श था। चेतना, स्फूर्त्ति और जीवन-जागृति की जो लहर आर्यसमाजों में उन दिनों में बढ़ रही थी,

उसका उद्गम-स्थान जालन्धर-आर्यसमाज था। जालन्धर-आर्य-समाज को यह नेतृत्व जिन आर्य पुरुषों के निरन्तर और अनथक प्रयत्न से प्राप्त हुआ था, उन में देवराजजी का अपना ही स्थान था। इस का मुख्य कारण यह था कि देवराज जी जालन्धर में आर्यसमाज की स्थापना से पहिले से ही व्यक्तिगत जीवन की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया करते थे। लाहौर में श्री मुन्शी-राम जी के आर्यसमाज में दीक्षित होने के बाद आप का साहस और भी अधिक बढ़ गया और उनके साथ मिल कर आप आर्य-पुरुषों के जीवन को अधिक उन्नत बनाने में पूरे उत्साह के साथ लग गये। आर्य-पुरुषों के घरों में पारिवारिक-प्रार्थना-उपासना करने का क्रम इसी विचार से शुरू किया गया था। प्रत्येक मङ्गलवार को सब भाई किसी आर्य-सभासद् के यहां इकट्ठे होते थे। घर और परिवार के ही नहीं, किन्तु सारे मुहल्ले के लोगों पर उस प्रार्थना-उपासना का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था। श्री देवराजजी की प्रेरणा से इस पारिवारिक-प्रार्थना का श्रीगणेश ज़ालन्धर-आर्यसमाज में सब से पहिले किया गया था। आर्य सभासदों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति, वेदादि शास्त्रों एवं महर्षि-कृत ग्रन्थों को पढ़ने-पढ़ाने तथा सुनने-सुनाने का अनुराग और अपने जीवन को आर्य-सिद्धान्तों के अनुसार ढालने की आकांक्षा पैदा करने में श्री देवराज जी और श्री मुन्शीराम जी निरन्तर लगे रहते थे। शाम को प्रति-दिन आर्य-सभासद्

समाज-मन्दिर में इकट्ठे होकर सन्ध्यादि नित्य कर्म करते थे और साथ में धर्म-चर्चा भी होती थी। पारस्परिक शंकाओं की निवृत्ति के साथ २ प्रचार के साधनों पर भी विचार होता था। स्वाध्याय-शील सभासदों के घर-घर जाकर श्री देवराजजी और श्री मुंशीराम जी उनकी शंकाओं का समाधान किया करते थे। व्यक्तिगत जीवन को उन्नत बनाने के लिये किये गए इस परिश्रम का ही यह परिणाम समझना चाहिये कि जालन्धर का आर्यसमाज सारे प्रान्त की आर्यसमाजों में मुख्य और प्रधान समाज माना जाता था। सनातनियों और आर्यसमाजियों में शास्त्रार्थ की मुठभेड़ के अखाड़ों में भी जालन्धर का अखाड़ा बहुत प्रसिद्ध और मुख्य था। उन दिनों आर्यसमाज में संस्कृत जानने वाले पंडितों की कमी थी। इसलिये लाहौर की आर्य प्रतिनिधि-सभा से स्वीकृति प्राप्त किये बिना किसी भी आर्यसमाज को शास्त्रार्थ और उत्सव करने का अधिकार नहीं था। जालन्धर-आर्यसमाज ने अमृतसर के सनातनी पंडित श्यामदास का चेलेंज स्वीकार करके उसके साथ शास्त्रार्थ करने का निश्चय कर लिया और लाहौर से आर्यसमाजी पंडित को बुलाने के लिये आदमी भेजा। पर वहां से कोरा जवाब मिला कि 'छोटे २ आर्यसमाजों को बिना हमारी आज्ञा के शास्त्रार्थ नहीं रच लेना चाहिये। यदि साहस नहीं था, तो शास्त्रार्थ की डींग ही क्यों हांकी थी?' लाहौर से यदि यह जवाब न मिलता, तो सम्भवतः

जालन्धर के आर्य पुरुषों में स्वावलम्बन की भावना न पैदा होती और अपने को दृढ़ आर्य बनाने की ओर उनका ध्यान भी न गया होता। परिणाम यह हुआ कि जालन्धर - आर्यसमाज कुछ अंशों में लाहौर आर्यसमाज से भी अधिक शक्ति-सम्पन्न बन गया। उसने पण्डित श्यामदास क्या, व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालु जी सरीखों के साथ भी गहरी टक्कर ली और अपने उत्सव भी स्वयं मनाने शुरू कर दिये। लाहौर के 'दयानन्द-ऐंग्लो-वैदिक-कालेज' की शिक्षा-पद्धति, प्रबन्ध और आदर्श को लेकर लाहौर में आर्यसमाज में जिस गृह-कलह का श्रीगणेश हुआ और बाद में आर्य प्रतिनिधि-सभा की बागडोर और मांस-भक्षण के प्रश्न को लेकर जिस कलह ने महाभारत का-सा रूप धारण कर लिया था, उसके महाभयानक काल में आर्य-समाज के सत्य और सत्व की रक्षा करने का श्रेय जिन कुछ आर्यसमाजों को प्राप्त है, उनमें क्वेटा, पेशावर, लुधियाना, अमृतसर और जालन्धर आदि की समाजें मुख्य थीं। मुन्शीराम जी इसी समय सामने आये। उनके उत्थान अथवा उत्कर्ष का प्रारम्भ यहीं से होता है। श्री देवराज जी का यह बड़प्पन समझना चाहिये कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व को पीछे रख कर श्री मुन्शीराम जी को आगे कर दिया। अपने को अनुयायी बना कर उनको नेता मान लिया। लाहौर में उनके आर्यसमाज में प्रविष्ट होने का समाचार सुनते ही उनको जालन्धर-आर्य-

समाज का प्रधान बना कर स्वयं उसके कार्यकर्त्ता, उपदेशक प्रचारक तथा सेवक बन गये। लाहौर के गृह-कलह में श्री देवराज जी भी शामिल हुये थे, किन्तु वैसे ही जैसे कुरुक्षेत्र के मैदान में श्रीकृष्ण उपस्थित हुये थे। वीर सेनापति का पद श्री मुन्शीराम जी को सौंप कर आपने सारथि का साधारण काम अपने जिम्मे लिया था! उस समय के महान् आर्यपुरुषों के त्याग, सेवा तथा दूसरों को ऊपर उठा कर स्वयं पीछे रहने की इस प्रवृत्ति ने और प्रचार-प्रधान धर्म को ही अपना हृदय न बनाकर अपने जीवन को आर्य सिद्धान्तों के अनुसार ढालने के लिये आचार-प्रधान धर्म को सम्पादन करने के प्रयत्न ने आर्यसमाज को जो महान् गौरव प्राप्त कराया था, उसी के सहारे आर्यसमाज आज भी जीवित है। श्री देवराज जी में ये सब सद्गुण आवश्यकता से अधिक मात्रा में विद्यमान थे। आर्यसमाज के उत्सवों पर जब वे काम की धुन में मस्त होते थे, तब यह नहीं मालूम होता था कि श्री शालिग्राम जी रईस के आप सुपुत्र हैं। लखपति घराने का पुत्र होने पर भी कुली, मजूर और चपरासी का काम करने में भी आप अपना गौरव मानते थे। खेमों के खूंटे गाढ़ने, उत्सव मण्डप में दरी बिछाने और वहां साफ-सफाई रखने तक का सब काम करते हुए भी संकोच या लज्जा आप कभी अनुभव नहीं करते थे। फिर सड़कों पर खड़े होकर धर्म-प्रचार करने, भजन मण्डलियां बना कर आक्ष-

मुहूर्त तथा रात्रि में बाज़ारों में उनका नेतृत्व करते हुये निकलने और ऐसे ही अन्य उपायों से आर्यसमाज का प्रचार करने में आप सदा संलग्न रहते थे। आप न तो किसी कार्य को ऐसा हीन मानते थे जिसके करने में छोटापन अनुभव करते हों और न ऐसा महान ही जिस को अपनी शक्ति से बाहर समझ कर असम्भव मानते हों।

उन दिनों में आप और श्री मुन्शीराम जी पर दो तन और एक मन वाली कहावत चरितार्थ होती थी। श्री मुन्शीराम जी के हर एक कार्य में आप उनके समर्थक और सहायक होते थे। सम्वत् १९४५ की दिवाली (ऋषि-उत्सव) पर श्री मुन्शीराम जी ने अपने सुप्रसिद्ध पत्र "सद्धर्म प्रचारक' को शुरू करने का जब विचार उपस्थित किया था, तब उसको कार्य-रूप में परिणत करने में आप उनके सबसे पहले सहायक हुये थे और आपके तथा श्री मुन्शीराम जी के संयुक्त सम्पादकत्व में ही वह सम्वत् १९४६ की वैशाखी से निकलना प्रारम्भ हुआ था। उसके प्रायः प्रत्येक अङ्क में आप द्वारा लिखे हुये लेख निकलते थे और आर्यसमाज की गृह-कलह को लेकर, आप द्वारा संचालित 'कन्या महाविद्यालय' पर की जाने वाली टीका-टिप्पणी और कटाक्षों के जवाब में भी आप को निरन्तर लेख लिखने पड़ते थे।

आर्य पुरुषों के व्यक्तिगत जीवन को उन्नत बनाने के लिये आचार-प्रधान धर्म के सम्पादन करने की ओर आप दोनों का जो ध्यान था, उसी का यह परिणाम समझना चाहिये कि आप दोनों ने बालक बालिकाओं के चरित्र-निर्माण के साथ साथ आचार-प्रधान धर्म की दृढ़ नींव डालने वाली महान् संस्थाओं की स्थापना करके असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य को अपने जीवन में सम्भव कर दिखाया। हरिद्वार की गंगा के उस पार कांगडी के घने जंगलों मे गुरुकुल की स्थापना करने के यत्न में लग जाने पर श्री मुन्शीराम जी 'महात्मा' होकर अभ्युदय के दूसरे मार्ग की ओर चल दिये और श्री देवराज जी ने अपने को एकमात्र उस संस्था में लगा दिया जो शीघ्र ही न केवल पंजाब किन्तु सुदूर प्रांतों मे 'कन्या-महाविद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध होकर स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में महान, अद्भुत और अलौकिक चमत्कार कर दिखाती है। यही संस्था श्री देवराज जी का जीवन-कार्य है। इसका प्रारम्भ भी आपने और श्री मुन्शीराम जी ने मिलकर ही किया था। उसके सम्बन्ध में कुछ लिखने से पहले आपके सार्वजनिक जीवन के विकास के समय की कुछ घटनाओं का उल्लेख करना उपयोगी और आवश्यक है। जिस मित्रमण्डली का उल्लेख ऊपर किया गया है, 'सद्धर्मप्रचारक' और 'कन्या-महाविद्यालय' को उसी के सदुद्योग का शुभ परिणाम

कहना चाहिये। उनके प्रारम्भ करने में और उनकी सफलता में उस मित्रमण्डली के सदस्यों का विशेष हाथ था।

२.

कुछ घटनायें

गुरु नानक की तरह श्री देवराज जी को घरेलू काम काज में कभी अनुराग पैदा नहीं हुआ। वे घर के काम के लिये पैदा ही नहीं हुये थे। आपके दो बड़े भाई श्री बालकराम जी और श्रीभक्तरामजी विद्याध्ययन के लिये विदेश गये थे। पिताजी तथा अन्य सम्बन्धियों की यह उत्कट इच्छा और प्रबल अभिलाषा थी कि आप भी विदेश जाकर कोई बड़ी डिग्री लावें और स्वयं सम्पन्न होकर घर के वैभव को भी बढ़ावें। विदेश जाने का प्रलोभन साधारण न था। पर, श्री देवराज जी अपने को दूसरे

काम में लगा चुके थे। प्रारम्भिक अवस्था में ही आपके मन में समाज-सुधार की तीव्र भावना जाग चुकी थी। आप ने अपने घर में एक 'क्लब' की स्थापना की, जिस में आप की मित्र-मण्डली के प्रायः सभी सदस्य शामिल थे। क्लब के अधिवेशनों में बड़ी गम्भीरता के साथ आप समाज-सुधार-सम्बन्धी उन विषयों की चर्चा किया करते थे, जिन को तब अनावश्यक या फालतू समझा जाता था और अब जिन के प्रचार के लिये बड़ी बड़ी संस्थाओं की स्थापना हो चुकी है। आप की गम्भीरता का अन्य सभासद प्रायः मज़ाक़ किया करते थे। अपने ही बनाये हुए भजन जब आप गाया करते थे, तब क्लब का कमरा हंसी से गूंज उठता था। अपने साथियों की यह सब हंसी-मज़ाक़ आपको अपने ध्येय से विचलित नहीं कर सकी। आपके साथियों की आप की 'क्लब' के प्रति मनोवृत्ति का कुछ परिचय उस समय की एक घटना से मिल जाता है। श्री मुन्शीरामजी और श्री बालकरामजी एक बार क्लब का सब चन्दा लेकर जालन्धर छावनी चले गये थे और वहां गुलछर्रें उड़ाने में वह सब रक़म खर्च कर आये थे। साथियों की ऐसी उच्छृंखलता और विच्छृंखलता पर भी आप कभी अधीर नहीं हुये। दत्तचित्त हो आप उसके संचालन में ऐसे लगे रहे कि उसके संस्थापक, संचालक, संयोजक, व्याख्याता, उपदेशक और भजनीक ही नहीं, किन्तु चपरासी तक का सब काम आप को ही करना पड़ता

था । वही कुब कुछ समय बाद जालन्धर-आर्यसमाज में परिणत हो एक शक्तिशाली संस्था बन गया ।

घर से भाग निकले

शालिग्राम जी सरीखे रईस और साहूकार, जिन के दो बड़े लड़के विलायत में साहबों का-सा जीवन बिता रहे थे, अपने तीसरे पुत्र का आर्यसमाज के पीछे आवारागर्द होना सहन नहीं कर सकते थे । आर्यसमाज से उन को प्रेम नहीं था, प्रत्युत वह उनकी आंखों में चुभता था । मिलने-जुलने वाले सदा ही जले पर नमक छिड़कते रहते थे । फलतः पिता के लिये पुत्र का यह सब काम असह्य हो उठा । समझाने बुझाने पर भी जब वह पिता की राह न लगा, तब वे कुछ गरम हुये । पिता की उस गरमी को पुत्र सहन न कर सका और एक रात को कुछ कपड़े और कुछ रुपये ले घर से निकल पड़ा । बम्बई, कलकत्ता, कराँची आदि चारों ओर तार खटखटाये गये । २० वर्ष की आयु का वह महत्वाकांक्षी युवक डायमन्ड हारबर तब पकड़ा गया, जब वह वहां से अंडमन जाने की तैयारी में था । उसकी आकांक्षा थी — वहां जाकर बस जाने की और वहां के कैदियों में वैदिक-धर्म का प्रचार करने की । यह विश्वास दिलाने पर वह लौटा कि उसके घरवालों की ओर से कभी कोई अड़चन नहीं डाली जायगी और आर्य-

समाज का काम करने की उसको पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। अपने ध्येय, विश्वास तथा लगन के लिये सब प्रकार से सम्पन्न घर को इस प्रकार ठुकरा देने वाला युवक क्यों न महापुरुष के उस पद को प्राप्त करता, जिसकी पूजा सभी देशों और सभी जातियों, सभी राष्ट्रों और सभी समाजों में बड़ी श्रद्धा-भक्ति और आदर से की जाती है !

जातिच्युत करने की धमकी

घर से निश्चिन्त होने के बाद जात-बिरादरी वालों के विरोध का समय आया। स्थानीय आर्यसमाज और स्थानीय सनातनधर्म-सभा में प्रायः संघर्ष मचा रहता था। आर्यसमाज की शक्ति उस समय पूरे यौवन पर थी। पौराणिकता के उपासक सनातनी, शास्त्रार्थ व्याख्यान और प्रचार के मैदान में आर्यसमाज का मुकाबला न कर सके। अन्त में उन्होंने सब आर्यसमाजियों को जातिच्युत अथवा बिरादरी से खारिज करने के अंतिम उपाय को काम में लाने का निश्चय किया। उनके पास यही इन्द्रास्त्र शेष था। पंडितों उर्फ नामधारी ब्राह्मणों की पंचायत वैसी व्यवस्था देने के लिये बुलायी गई। शहर में भारी तहलका मच गया। पंचायत में आने वाले ब्राह्मणों की सूची बनने लगी और उनके चरित्र की खुली चर्चा होने लगी। मां-बाप भले ही आर्यसमाजी नहीं थे, किन्तु उनके लड़के, पोते,

दोहते और भतीजे आदि आर्यसमाजी थे, जिनका जाति से खारिज किया जाना वे सहन नहीं कर सकते थे। संक्रामक बीमारी से भी अधिक तीव्रता के साथ ऐसी चर्चा शहर में चारों ओर अपने आप ही फैल जाती है। चाहे कोई कुछ कहने का साहस न करे, परन्तु ऐसे समय पहले कभी न बोलने वालों का भी मुंह खुल जाता है और वह भी नमक-मिर्च लगा कर बात का बतंगड़ बनाने में शामिल हो जाते हैं। भले आदमी के लिये तब मुंह दिखाना कठिन हो जाता है, किन्तु जो पाप में डूबे रह कर धर्मात्मा बनने का ढोंग रच कर सर्वसाधारण को ठगते रहते हैं, उनकी तो ऐसी कलई खुलती है कि उजाले में घर से बाहर निकलना उनके लिये कठिन हो जाता है। यही अवस्था उन ब्राह्मण-धर्माभिमानी पंडितों की हुई। किसी के सम्बन्ध में कहा जाने लगा कि अमुक के लिये काला अक्षर भैंस बराबर है और अमुक गायत्री तक का उच्चारण नहीं कर सकता तो वेदवक्ता क्या होगा! अमुक अपने घर की फलानी स्त्री के साथ फंसा हुआ है और अमुक वेश्यागामी—व्यभिचारी है! अमुक जुएबाज है और अमुक शराब तथा कवाब का सेवन करता है। पंचायत में आकर सरपंच बनने का किसी को साहस न हुआ। उनमें से ही एक से देवराज जी को यज्ञोपवीत दिलवाया गया था। वे भी मुंशीराम जी के साथ उनके पास गये और उनसे बोले—"पंडित जी, वैसे तो

आप मेरे गुरु हैं। आप पंचायत कीजिये। पर, हमारा पहिले यह सवाल होगा कि जो इस प्रकार के पापाचार में लिप्त हैं, उनके लिये आप क्या व्यवस्था देते हैं? यदि उनको गधे पर चढ़ा कर आप देश-निकाले की सज़ा देंगे, तो हम अपनी सफाई पेश करेंगे।" देवराज जी की धमकी काम कर गई। पंचायत का समय आया तो कोई टिकट कटवाकर अमृतसर चल दिया और कोई बीमारी का बहाना बना घर में दुबक रहा। श्री देवराज जी के गुरु जी लोटा ले कान पर जनेऊ चढ़ा सवेरे १० बजे जो जङ्गल गये तो शाम तक वापिस नहीं लौटे। पँचायत का समय आने पर वहां पांच ब्राह्मण भी उपस्थित न हुये। एंटवर्प के किले पर गोला दागने के लिये तैयार की गई तोप ठीक समय पर ऐसी बिगड़ी कि आर्यसमाजियों को जाति-च्युत कराने के मंसूबे बांधने वालों की आशा पर एकाएक तुषारपात हो गया।

'आटा-फण्ड' और 'रद्दी-फण्ड'

सार्वजनिक कार्यों के लिये पैसे मिलने की कठिनाई का प्रश्न जालन्धर आर्यसमाज के सामने भी उपस्थित हुआ। ऐसी कठिनाइयों का हल करना भी देवराज जी खूब जानते थे। आर्यसमाज सरीखी संस्थाओं के कार्यों के लिये हज़ारों और लाखों तो क्या, सैकड़ों देने वाले भी तब पैदा न

हुये थे और न तब उतने खर्च का सवाल ही पैदा हुआ था। जालन्धर आर्यसमाज का कार्य अन्य आर्यसमाजों की अपेक्षा कुछ अधिक फैला हुआ था। शहरों की सीमा को लांघ कर देहातों में प्रचार-कार्य का सिलसिला भी सम्भवतः सब से पहले जालन्धर आर्यसमाज ने शुरू किया था। इसी निमित्त से वेद-प्रचार-निधि कायम की गई थी। प्रतिनिधि सभा का कार्यालय लाहौर में था। इसीलिये कहने को आर्यसमाज के कार्य का केन्द्र लाहौर था किन्तु उस केन्द्र में जीवन की शक्ति का संचार करने वाला डायनामायट जालन्धर-आर्यसमाज था। जालन्धर-आर्यसमाज में उन्हीं दिनों में एक उपदेशक-विद्यालय की भी स्थापना की गई थी। स्वनामधन्य महामहोपदेशक पं० पूर्णानन्द जी को आर्यसमाज की सेवा में अग्रसर करने का अधिकांश श्रेय जालन्धर-आर्यसमाज को ही था। इस प्रकार जालन्धर-आर्यसमाज का खर्च कुछ अधिक था और दिन पर दिन कार्य की वृद्धि के साथ साथ वह भी बढ़ता जाता था। श्री देवराज जी ने पहले तो 'चाटी-सिस्टम' के नाम से 'आटा-फन्ड' स्थापित किया। प्रत्येक आर्य सभासद के घर में एक घड़ा इसलिये रखा जाता था कि बड़े सवेरे उसमें आर्यसमाज के लिये मुट्ठी आटा डाल दिया जाय। जब यह आटा फन्ड भी बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा न कर सका, तब रद्दी-फन्ड खोला गया। महीने के अन्त में आर्यसमाज का चपरासी सब

आर्यसमाजियों के यहां से रद्दी जमा कर लाया करता था, जिस को बेच कर रकम उस फन्ड में जमा कर दी जाती थी। आज कल ऐसे उपायों को अनेक स्थानों पर अनेक संस्थाओं के लिये काम में लाया जाता है, किन्तु श्री देवराज जी ने सन् १८८४ में उनका आविष्कार किया था। ऐसी ऐसी योजनायें सोच निकालने में आप अत्यन्त चतुर थे। इसी चातुर्य से आपने उस संस्था को सफलता की चरम सीमा तक पहुचा दिया, जिस ने पंजाब का कायापलट कर दिया है। स्थानीय आर्यसमाज के पुस्तकालय और वाचनालय का खर्च इसी रद्दी फण्ड से पूरा किया जाता था।

३.

कन्या-महाविद्यालय

संस्था की उन्नत अवस्था और सफल स्थिति से उन आरम्भिक कठिनाइयों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, जिन का सामना उसके संस्थापकों को करना पड़ता है और उन कठिनाइयों को जाने बिना उसके संस्थापक महापुरुषों के जीवन तथा कार्य के महत्व को ठीक ठीक समझना सम्भव नहीं है। 'कन्या-महाविद्यालय' की वर्तमान उन्नत अवस्था में श्री देवराज जी की महानता पर वैसा प्रकाश नहीं पड़ता, जैसा कि उस की प्रारम्भिक अवस्था और उसके क्रमिक विकास से पड़ता है। सुस्वादु फलों

से लदे हुए खेतों को देख कर माली या किसान की मेहनत की सराहना अवश्य की जा सकती है, किंतु उस की मेहनत का वास्विक महत्व तो उस कड़ी, पथरीली और जंगली जमीन को ऊसर से उपजाऊ बनाने में है। श्री देवराजजी को भी 'कन्या-महाविद्यालय' के बीजारोपण के लिये वैसी ही ऊसर भूमि में हल जोतना पड़ा था। आज से लगभग ५० वर्ष पहिले, जब 'कन्या-महाविद्यालय' की स्थापना की गई थी, लड़की का घर में पैदा होना भी भारी अभिशाप माना जाता था। जब उसके लालन पालन तक पर किये जाने वाले खर्चे को अपव्यय माना जाता था, तब उसकी शिक्षा पर एक कौड़ी भी कैसे खर्च की जा सकती थी? स्त्री-शिक्षा तब विचार और कल्पना मे बाहर का विषय था। पर, ईसाई ईसाइयत के प्रचार के लिये स्त्री-शिक्षा का सिलसिला शुरू कर चुके थे। जालन्धर में उन्हों ने एक छोटी-सी पाठशाला खोल ली थी। आर्य घरों की लड़कियां उसी पाठशाला में पढ़ने जाया करती थीं। वहां उनको ईसाइयों के गीत सिखाये जाते थे। श्री मुंशीराम जी ने अपनी सम्वत् १६८८ की पंजिका के १६ अक्तूबर के पृष्ठ में लिखा है कि "कचहरी से लौटकर जब अन्दर गया, तो वेदकुमारी दौड़ी आई और जो भजन पाठशाला से सीखकर आई थी, सुनाने लगी— 'इक बार ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल? ईसा मेरा राम रसैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।' इत्यादि। मैं बहुत चौकन्ना

हुआ। पूछने पर पता चला कि आर्य जाति की पुत्रियों को वैसे गीतों के साथ साथ अपने शास्त्रों की निन्दा करनी भी सिखाई जाती है। निश्चय किया कि अपनी पुत्री-पाठशाला अवश्य खोलनी चाहिये।" यह साधारण-सी घटना थी, जिसको इतनी महान् संस्था के स्थापित होने का कारण कहना चाहिये। श्री मुंशीराम जी को बात चीत करने पर मालूम हुआ कि अन्य आर्य पुरुषों को भी वैसी ही शिकायत थी। 'आर्य-कन्या विद्यालय' स्थापित करने का विचार स्थिर हो गया। श्री मुंशीराम जी और श्री देवराज जी इस काम में भी एक साथ भिड़ गये। दोनों ऐसे कर्तव्यशील थे कि जिस विचार को कार्य में परिणत करने की ठान लेते थे, उसको मूर्त रूप देने में उनको अधिक समय नहीं लगता था। सार्वजनिक जीवन के अन्य सब कार्यों से विरक्त होकर श्री देवराज जी ने अपने को एकमात्र स्त्रीशिक्षा के काम में लगा दिया और श्री मुंशीराम जी इसको प्रारम्भ करने के बाद दूसरे कार्यों में जा उलझे। इसी से 'कन्या-महाविद्यालय' को श्री देवराज जी के जीवन का कार्य समझना चाहिये। आपने उस कार्य को ऐसे स्वीकार किया था, जैसे कोई नया धर्म स्वीकार करता है। श्रद्धालु भक्त की तरह एकनिष्ठ होकर आपने उसका पालन किया और कट्टरपन्थी धर्मान्ध की तरह उसका प्रचार किया। बार बार की असफलता से आप अधिक ही अधिक उत्साहित होते रहे और हर बार अधिक लगन तथा

तत्परता से उसको सफल बनाने में लगते रहे। अन्त में आपको ऐसी सफलता प्राप्त हुई कि पंजाब के बाहर के भिन्न भिन्न प्रान्तों से ही नहीं किन्तु बर्मा, अफ्रीका, फीजी, यारकन्द आदि के सुदूर देशों से भी लड़कियों को कन्या-महाविद्यालय ने अपनी ओर आकर्षित करना शुरू कर दिया। गुरुकुल कांगड़ी जैसे अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के त्याग तथा तपस्या की विशाल मूर्ति है, हिन्दू-विश्वविद्यालय जैसे महामना मालवीय जी की लगन और प्रयत्न का महान मन्दिर है, शान्तिनिकेतन जैसे विश्वकवि रवीन्द्र की कल्पना और विभूति का अपूर्व प्रसाद है, हिंगणे (पूना) का महिला विश्वविद्यालय जैसे आचार्य कर्वे की साधना और कष्ट-सहन का तीर्थ स्थान है और नालन्दा तथा तक्षशिला के विश्वविद्यालयों के भग्नावशेष जैसे अब भी मध्यकालीन भारत की महिमा के साक्षी हैं, वैसे ही 'कन्या-महाविद्यालय' की सफलता श्री देवराज जी के त्याग, तपस्या, साधना, भावना, कल्पना, विभूति, धुन, लगन, अध्यवसाय तथा महान् व्यक्तित्व आदि का परिचय सदा देती रहेगी।

संस्था का प्रारम्भ

इस सफल और महान संस्था की स्थापना का पहिला प्रयत्न तीन रुपये महीने पर एक कमरा किराये पर लेकर किया गया था। एक बूढ़ा पंडित पढ़ने के लिये आने वाली लड़कियों की

प्रतीक्षा में दिन भर वहां बैठा रहता था और उसका संस्थापक लड़कियों को वहां भेजने के लिये उनके माता-पिता से बहस करता हुआ घर-घर घूमा करता था। कभी-कभी मकान का किराया और पंडित का वेतन तक भुगताना कठिन हो जाता था। आपके उस प्रयत्न को सफल बनाने में सब से पहिली सहायक आपकी माता जी हुईं। माता जी के इस अनुग्रह का उल्लेख आप आजन्म बड़ी कृतज्ञता के साथ करते रहे और संस्था की सफलता का सब श्रेय प्रायः आप माता जी को दिया करते थे। जब कभी आपके भक्त सहकर्मी या प्रशंसक संस्था की सफलता पर आपकी प्रशंसा करते, तब आप सहसा अपनी माता जी का नाम लेकर उनको प्रशंसा का अधिकारी बताया करते थे। एक बार एक सज्जन ने आपकी जीवनी लिखने का विचार आपके सामने प्रगट किया, तो अपने को एक साधारण व्यक्ति बताते हुए आपने कहा कि मेरी जीवनी क्या है, जीवनी तो उस माता की लिखी जानी चाहिये, जिसने मेरे हृदय में मातृपूजा की या मातृवन्दना की भावना को जगाया है। माता जी ने पंडित को अपने यहां रहने का स्थान दे दिया। इससे उसके वेतन के एक हिस्से का सवाल हल होगया। धीरे-धीरे बाकी खर्च की भी व्यवस्था हो गई, किन्तु शिक्षार्थी लड़कियों के मिलने का सवाल हल न हुआ। श्री देवराज जी मिठाई, खिलौने आदि जेबों में भर कर बड़े सवेरे घर से निकल पड़ते और परिचित घरों की लड़-

कियों को लालच देकर विद्यालय में आने के लिये उत्साहित करते हुये बहुत से घरों का चक्कर लगा आया करते थे। एक दिन जो लड़की आती, दूसरे दिन उसका कोई सम्बन्धी आता और उसको उठा ले जाता और श्री देवराज जी को दस-पांच जली-कटी सुना जाता। शहर में निकलने पर अपशब्दों के साथ-साथ आप पर रोड़े और कंकर भी बरसाये जाते थे। लड़कियों की शिक्षा का प्रयोजन सर्वसाधारण को समझाना कठिन था। जिस समाज में उनकी शिक्षा का अर्थ उनको दुष्चरित्र बनाना और उनकी मर्यादा के सर्वथा विपरीत समझा जाता था उसमें उनकी शिक्षा के परीक्षण को सफल बनाना लोहे के चने चबाने से भी अधिक कठोर और दुस्तर था। विरोध इतना तीव्र हो उठा कि फन्ड और संचालक के उत्साह के अभाव में नहीं, किन्तु लड़कियों के अभाव में उस विद्यालयको बन्द कर देना पड़ा। पर श्री देवराजजी के शब्दकोष में वीर नैपोलियन के शब्दकोष के समान 'असम्भव' शब्द नहीं था। उसी के समान अपनी माता से आपने भी पीठ न दिखाने की शिक्षा ग्रहण की थी। प्रारम्भ किये हुए काम में असफल होना या हार मानना आप जानते ही नहीं थे। थोड़े समय बाद दूसरी जगह मकान किराये पर लेकर फिर विद्यालय की स्थापना की गई। दो-तीन लड़कियां और महिलायें भी वहां पढ़ने के लिये आने लगीं। वह उद्योग भी फलने-फूलने से पहिले ही मुरझा गया। उसको भी लड़कियों के अभाव के कारण बन्द

कर देना पड़ा। तीसरी बार फिर स्थानीय आर्यसमाज के सह-योग से विद्यालय की स्थापना की गई। वह प्रयत्न भी अधिक दिन जारी न रह सका। सन् १८६० में कुछ अधिक दृढ़ता के साथ चौथी बार फिर विद्यालय खोला गया। वह ऐसा चला कि उसके पांच वर्ष बाद सन् १८६५ में कोट किशनचन्द में 'आर्य-कन्या-आश्रम' के नाम से लड़कियों के लिये होस्टल या बोर्डिंग भी खुल गया। उस आश्रम से ही 'कन्या-महाविद्यालय' का प्रारम्भ हुआ समझना चाहिये। जो बोले सो कुन्डा खाले वाला हाल था। सब से पहले श्री मुन्शीराम जी ने अपनी लड़की और श्री देवराज जी ने अपनी भतीजी को उस आश्रम में भरती किया। समाज-सुधार का जितना सम्बन्ध आचार के साथ है, उतना प्रचार के साथ नहीं। आचरण और उदा-हरण द्वारा यदि स्वयं आदर्श उपस्थित किया जा सके तो बिना कहे लोगों पर उस का प्रभाव पड़ता है। श्री देवराज जी और श्री मुन्शीराम जी ने अपने इस आचार द्वारा जो आदर्श उपस्थित किया था, उसका परिणाम यह हुआ कि जालन्धर से बहुत दूर के शहरों और अन्य प्रान्तों से भी आश्रम में कन्याओं को प्रविष्ट कराने के इतने अधिक प्रार्थना-पत्र आने लगे कि जो प्रयत्न लड़कियों के अभाव में इतनी बार असफल हुआ था, वह जनता की माँग के सामने अधूरा प्रतीत होने लगा। शहर से बाहर दो मील की दूरी पर तीन सौ लड़कियों

के रहने की व्यवस्था करने पर भी जनता की मांग को पूरा नहीं किया जा सका। स्त्री-शिक्षा की बढ़ती हुई शहर की आवश्यकता के लिये दो शाखा विद्यालयों का भी स्थापित करना पर्याप्त नहीं रहा। अब लड़कियों के लिए होस्टल या आश्रम खोलना उतना कठिन नहीं रहा और अनेक शहरों में अनेक आश्रम स्थापित भी हो चुके हैं, किन्तु जालन्धर में इस आश्रम की स्थापना होने के १० वर्ष बाद भी पञ्जाब के सरकारी-शिक्षा-विभाग तक के लिए यह समझना कठिन था कि लड़कियों के लिए होस्टल खोलने के परिणाम को किस प्रकार सफल बनाया जा सकता है? १६०५ में क्वीन मेरी कालेज की ओर से लड़कियों के लिए होस्टल खोलने का प्रस्ताव सरकार के सामने उपस्थित किया गया था। तब पंजाब के शिक्षा-विभाग का डाइरेक्टर यह देखने के लिए जालन्धर आया था कि उस परीक्षण को कैसे सफल बनाया गया है? वह महा-विद्यालय की सफलता पर इतना मुग्ध हुआ था कि उस का निरीक्षण करने के बाद उसने लिखा था कि "प्रान्त में लड़कियों के लिए ऐसी कोई दूसरी संस्था नहीं है, जिस को मैंने इस से अधिक पसन्द किया हो"। ऐसी अद्वितीय और सफल संस्था के संस्थापक होने से ही उसने श्री देवराज जी को 'लाखों में एक' कहा था।

अचरज तो यह है कि पुराणपन्थियों के विरोध के साथ २ आर्यसमाजियों के विरोध का भी श्री देवराज जी को सामना करना पड़ा। अपनों और परायों का विरोध एवं आक्रमणों का सामना और उन द्वारा पैदा किये गये भ्रमों को दूर करने का काम कुछ आसान नहीं था। बाह्य परिस्थिति को अनुकूल बनाने के साथ २ अन्तरंग की सब ज़िम्मेवारी भी आप पर ही थी। दक्षिण में परदा-प्रथा और स्त्रियों के प्रति मनुष्य की भावना इतनी अपमानपूर्ण एवं कुत्सित नहीं है, इस लिए आचार्य धोंडोंपन्त कर्वे को पूना में महिला-विश्वविद्यालय स्थापित करने में उन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा, जिनका सामना श्री देवराज जी को करना पड़ा था। वैसे दोनों की लगन, धुन और अध्यवसाय ऐसा है कि उन की किसी और से क्या, परस्पर भी तुलना नहीं की जा सकती। दोनों ने हिमालय को पैदल चल कर पार करने के सदृश असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य को सफल करके दिखाया है। विद्यालय की प्रारम्भिक अवस्था में ही श्री देवराजजी के सामने दो और कठिनाइयां उपस्थित हुईं। एक अध्यापिकाओं का न मिलना और दूसरे शिक्षा के लिए उपयुक्त पुस्तकों का सर्वथा अभाव। पहली कमी को दूर करने के लिए कुछ वयोवृद्ध अध्यापक रख लिए गये, किंतु विरोध का बवण्डर उठ खड़ा हुआ। पुरुषों की छाया से परे रखी जाने वाली लड़कियों का पुरुष अध्यापकों

के पास पढ़ने के लिए बैठना कैसे सहन किया जा सकता था ? विघ्नसन्तोषी लोगों को विरोध करने के लिए अच्छा मौका मिल गया। ी देवराज जी विचलित नहीं हुए और अपनी साधना में लीन रहे। शिक्षा के लिए उपयुक्त हिन्दी-पुस्तकों के अभाव की पूर्ति करने में स्वयं लग गये। उस व्यक्ति के अथक श्रम और निरन्तर अध्यवसाय की कुछ कल्पना तो कीजिये, जिस को ऐसी संस्था के संस्थापक होने के कारण ही उस के सञ्चालक, अध्यापक, प्रबन्धक, पुस्तक-लेखक और अधिष्ठाता आदि का सब काम स्वयं करना पड़ता था। उस के अतिरिक्त संस्था की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के लिए फण्ड जमा करने, समाचार-पत्रों में उनके लिए आन्दोलन करने, भ्रम एवं विरोध के निराकरण के लिए लम्बे २ लेख लिखने और लड़कियों के संरक्षकों के साथ पत्र-व्यवहार करने का सब काम भी उसी को करना पड़ता था। न केवल विद्यालय और आश्रम का, किन्तु आफिस, पब्लिसिटी एवं प्रोपेगण्डा के सब काम का भार भी आप को अपने ही कन्धों पर उठाना पड़ता था। कन्याओं की पढ़ाई के लिए उपयोगी तीन दर्जन से कुछ अधिक पुस्तकें आप ने लिखी हैं। उन में अनेकों के ८—१० संस्करण हो चुके हैं। कन्या-महाविद्यालय की सब पढ़ाई का माध्यम प्रारम्भ से ही हिन्दी है। इसी से उस के लिये आवश्यक पाठ्य-पुस्तकों की रचना का काम भी, संस्था की स्थापना तथा सञ्चालन के

कन्या-महाविद्यालय-जालन्धर के भव्य-भवन का बाहरी दृश्य
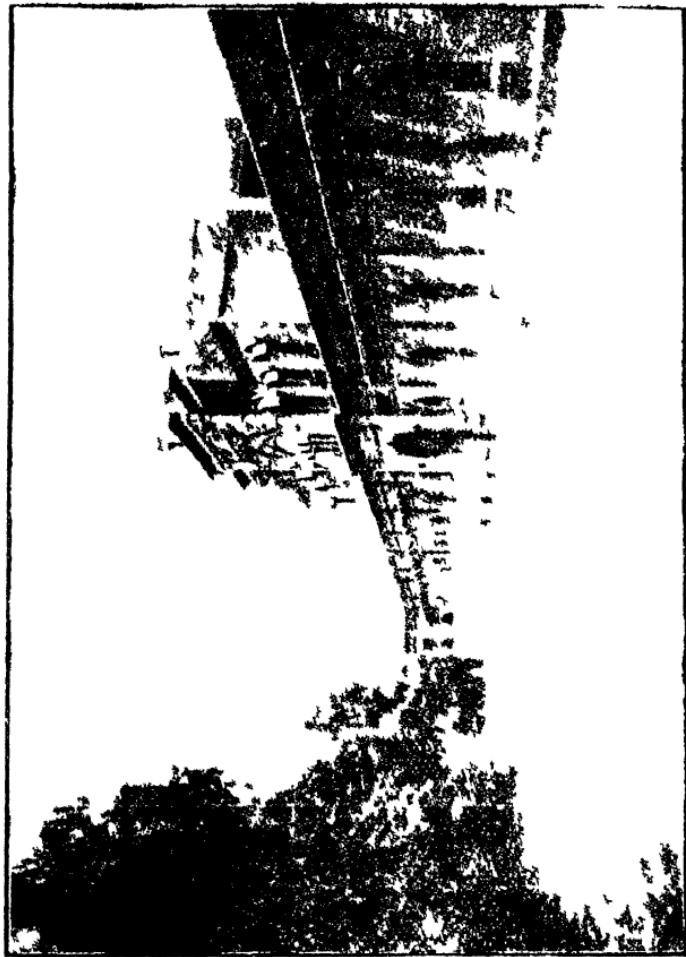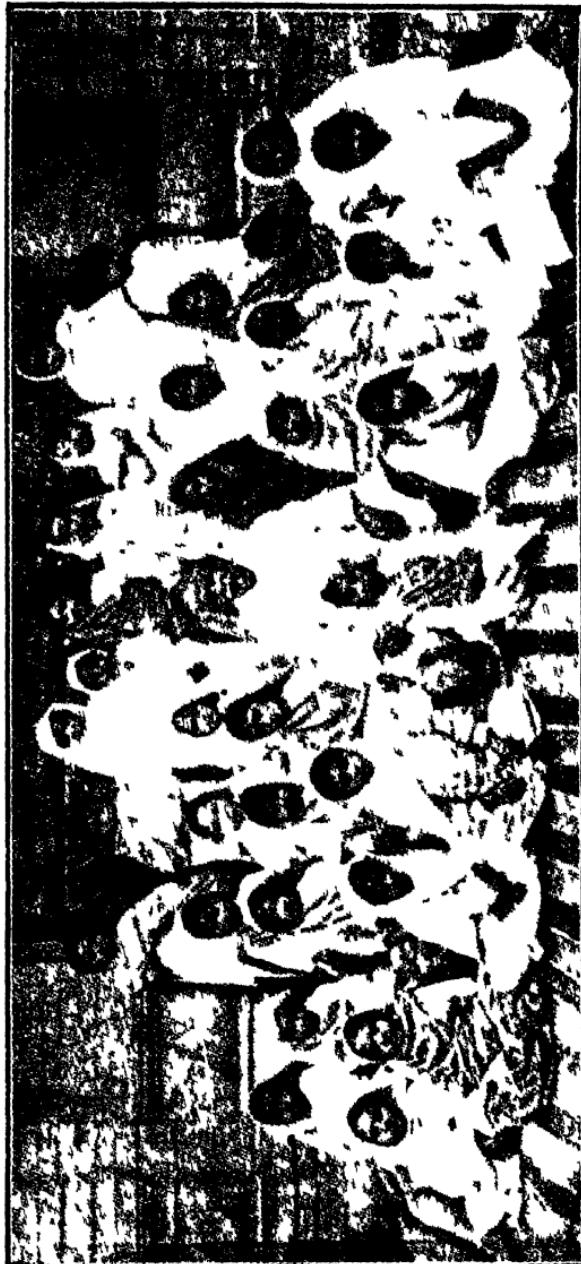
महाविद्यालय की 'हो-मण्डली'

(बीच मे स्वर्गीय देवराजजी बैठे हैं ।)

समान श्री देवराज जी को ही करना पड़ा था। पंजाब में सौ-सवासौ से अधिक कन्या-पाठशालाओं की स्थापना कन्या-महाविद्यालय के बाद उसी के अनुकरण में हुई है। उन का शिक्षा-क्रम और पाठ्य-पुस्तकें भी उसी के समान हैं। इस प्रकार पंजाब में स्त्री-शिक्षा[1] के क्षेत्र में 'कन्या-महाविद्यालय' ने मार्ग-दर्शक का काम किया है और उसके नाते श्री देवराजजी को स्त्री-शिक्षा का प्रवर्त्तक कहा जा सकता है।

गायन विद्या में पारंगत न होने पर भी सार्वजनिक जीवन, विशेष कर प्रचार, में उसकी उपयोगिता आप अनुभव कर चुके थे। महाविद्यालय की पढ़ाई में गायन को आवश्यक विषय के तौर पर रखा गया। मिरासियों और वेश्याओं के इस विषय को विद्यालय की पढ़ाई का अनिवार्य अंग बनाने पर विरोध का तूफान एक बार फिर उमड़ पड़ा। पर, देवराज जी की समाधि भंग नहीं हुई। आप अपने निश्चित ध्येय से चल-विचल नहीं हुये। उसी का यह परिणाम समझना चाहिये कि पंजाब में घर घर गाने बजाने की प्रथा घर कर गई है।

किसी कालेज या ऐसी किसी और संस्था में उच्च शिक्षा प्राप्त न करने पर भी आप शिक्षा-कला में प्रवीण थे। आप को कुशल और सफल शिक्षक कहा जा सकता है। छोटी लड़कियों को मैदान, बगीचे और खेतोंमें ले जाकर खेल-कूद में आप असाधारण

शिक्षा दिया करते थे। फूलों, पत्तों, फलों आदि के नाम याद कराने के साथ साथ उनको कितनी ही पुस्तकों का पाठ भी पढ़ा देते थे। कहानी सुनाना और पहेली डालना आपके बहुत ही प्रिय विषय छोटी-बड़ी लड़कियों के साथ उनकी आयु, रुचि, समझ तथा शिक्षा के अनुसार उनके साथ खेलने, कहानी कहने और पहेली डालने में आप विशेष चतुर थे। बच्चों के साथ बिलकुल बच्चा बन जाते थे। उस समय आप अपनी गम्भीरता, बुढ़ापा और बड़प्पन सब एक-एक भूल जाते थे। विद्यालय में छोटी लड़कियों की एक 'हो-मण्डली' थी, जो विद्यालय में आपके पहुंचने पर हो-हो की गगनभेदी ध्वनि के साथ आपका स्वागत किया करती थी। उस मण्डली की लड़कियों को आपके साथ पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वे बन्दरों की तरह आपके कन्धों पर चढ़ जाती थीं और कोट-कुर्ते आदि के खीसों की सब तलाशी ले डालती थीं। इसीलिये आप कभी खाली जेबों के साथ विद्यालय में नहीं जाते थे। बच्चों के लिये कुछ न कुछ लेकर ही जाया करते थे। खेल-कूद के भजन आपने इतने सुन्दर और मनोहर बनाये थे कि लड़कियां उनको तुरन्त याद कर लती थीं। विद्यालय की प्रारम्भिक पढ़ाई का यही क्रम था। खेल-कूद और प्रारम्भिक पढ़ाई में कुछ विशेष अन्तर नहीं था। शिक्षा के इस क्रम का और उसके लिये आवश्यक सब पाठ्य सामग्री तथा खेल-कूद आदि का आविष्कार भी आपने ही किया था। दिन में जैसे छोटी लड़कियों के साथ

आप खेला करते थे और खेल-कूद में उनको पढ़ाया करते थे, वैसे ही बड़ी लड़कियों के साथ आप सवेरे-शाम घूमने जाया करते थे और उस समय भजनादि याद करवाते हुये उनको साधारण ज्ञान को आवश्यक एवं व्यावहारिक शिक्षा दिया करते थे। इन सब खेल-कूदों और भजनों में देश-भक्ति, उदार विचार और विशाल भावना की सामग्री कूट-कूट कर भरी रहती थी। बचपन से ही उनके दिल और दिमाग में उदारता, सहिष्णुता देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना भरी जाती थी।

मातृ जाति का उत्थान

'कन्यामहाविद्यालय' की स्थापना के पीछे केवल स्त्री-शिक्षा की ही भावना काम नहीं कर रही थी, किन्तु मातृपूजा की प्रबल भावना भी श्री देवराज जी के हृदय में समाई हुई थी। अपनी माता के प्रति आपकी जो श्रद्धा भक्ति थी उसका दायरा इतना विस्तृत और व्यापक बन गया था कि आपके लिये स्त्री जाति को दीन-हीन तथा पराधीन अवस्था में देखना सम्भव नहीं था। हिन्दू-समाज में उनको जिस उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए पद-दलित अवस्था में पहुचा दिया गया था, उसके विरुद्ध विद्रोह की प्रबल भावना आपके हृदय में उद्दीप्त हो चुकी थी। महाविद्यालय में लड़कियों के लिये जहां आश्रम खोला गया था, वहां अनाथ एवं विधवाओं के लिये भी आश्रय की व्यवस्था की गई थी।

कितनी ही अनाथ एवं विधवा बहिनों ने उस आश्रम से लाभ उठाया है और आज वे अपने जीवन को शिक्षित एवं उन्नत बना गृहस्थ का सुखी जीवन बिता रही हैं। सर गंगाराम ट्रस्ट के आधीन भारतव्यापी विधवा-विवाह-सहायक-सभा के संस्थापक स्वनामधन्य स्वर्गीय श्री गंगाराम जी के समान श्री देवराज जी की भी मातृ-शक्ति में अटल श्रद्धा-भक्ति थी। श्री गंगराम जी विधवाओं के पुनर्विवाह में जिस सुख, शांति और सन्तोष को अनुभव किया करते थे, उसी को श्री देवराज जी स्त्री-जाति को जागृत एवं प्रगतिशील होते हुये देख कर किया करते थे। दोनों की दृढ़ धारणा थी कि स्त्री-जाति की सेवा से मिलने वाले आशीर्वाद से ही उनको उतनी दीर्घ आयु और जीवन में वैसी सफलता प्राप्त हुई थी। पंजाब में स्त्रियों में पैदा हुई जागृति का सर्वप्रथम और अधिकांश श्रेय वस्तुतः देवराजजी को ही है। पर्दा प्रथा को दूर करते हुये उनकी विवाह-योग्य आयुकी अवधिको उन्नत करनेका जो कार्य महाविद्यालयने किया है, वह उनकी शिक्षासे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। आज यह समझा जाता है कि पंजाब परदे की कट्टरता, कठोरता, बेहुदगी और पाप से बरी है, किन्तु तब ऐसी अवस्था नहीं थी। महाविद्यालय की लड़कियों को पारितोषक देने के लिये उन दिनों में यह व्यवस्था की जाती थी कि लड़कियों को परदे के पीछे बिठाया जाता था। वे बाहर न आ कर केवल हाथ बाहर करके पारितोषक ले लेती थीं। कुछ समय

बाद महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर जब लड़कियों ने अपने कुछ खेल वगैरह पहली बार दिखाये थे, तब भी विरोध का तूफान उमड़ पड़ा था और संस्था पर आक्षेपों एवं आक्रमणों की भयानक बौछार की गई थी। पर, श्री देवराज जी अपने मार्ग पर अंगद के अंगूठे की तरह स्थिर रहे। आपने इस प्रकार स्त्री जाति को परदा-प्रथा से मुक्ति दिला उसकी विवाह-योग्य आयु को उन्नत बनाया, उनमें स्वावलम्बन की भावना पैदा की, सादगी तथा भारतीय संस्कृति से प्रेम उत्पन्न किया, उनके जात-पात तथा छूतछात के जन्मगत कुसंस्कारों का उन्मूलन किया और उनमें अपने व्यक्तित्व को जानने तथा पहिचानने की शक्ति पैदा की। स्त्री-जाति के व्यक्तित्व का विकास करके मातृजाति का उद्धार करना महाविद्यालय का सर्वोपरि, अत्यन्त सराहनीय और महान् यशस्वी कार्य है। विद्यालय में प्रारंभिक दिन से जात-पात के भेद-भाव को नहीं माना गया और आश्रम की स्थापना की प्रारंभिक अवस्था से सब लड़कियों का खान-पान तथा रहन-सहन एक-सा रखा गया है। केवल किताबी-शिक्षा या पुस्तक ज्ञान का ध्येय सन्मुख रख कर श्री देवराज जी ने महाविद्यालय की स्थापना नहीं की थी, किन्तु शिक्षा के व्यापक एवं विस्तृत ध्येय को सन्मुख रख कर उसका श्रीगणेश किया था। इसी लिये महाविद्यालय महिलाओं में चहुंमुखी जागृति पैदा करने में सफल हुआ है। पंजाब में उसने स्त्री-शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की जागृति के

क्षेत्र में भी पथ-प्रदर्शक का काम किया है। इस दृष्टि से भी श्री देवराज जी का यह जीवन-कार्य अत्यन्त गौरवपूर्ण और महत्व-शाली है। १९३० में नमक-सत्याग्रह से जिस देश-व्यापी आंदोलन का सूत्रपात हुआ था, उसमें पहली बार भारत की महिलायें सब झिझक, संकोच तथा भय त्याग कर सार्वजनिक क्षेत्र में आई थीं और उन्होंने देश को स्वतन्त्रता की लड़ाई के मैदान में अपने अपूर्व साहस, अलौकिक वीरता, लोकोत्तर त्याग और निस्सीम आत्मोत्सर्ग का विलक्षण परिचय दिया था। बाहिर की दुनिया से एकदम परे चूल्हे-चौके के धुंये के अन्धकार में भी कठोर परदे के भयानक नियन्त्रण में किसी प्रकार जीवन की इस लीला को पूरा करने वाली देवियों को देश-सेवा के मैदान में चण्डी, दुर्गा और लक्ष्मी के रूप में देख कर आपको ऐसा अनुभव हुआ था, जैसे आपकी तपस्या ही सफल होगई हो। आपने उस समय गद्गद् हृदय से कहा था कि "भारत को स्वराज्य मिले या न मिले, किन्तु मेरे जीवन का मिशन पूरा हो गया। भारतीय महिलाओं की जागृति का जो स्वप्न देखा करता था, वह अब सत्य सिद्ध होगया।"

महाविद्यालय की दो और विशेषतायें

महाविद्यालय की दो विशेषतायें और हैं, जिनसे श्री देवराज जी की उच्च और पवित्र भावना का भी कुछ परिचय मिलता

है। 'कट्टर' आर्यसमाजी होते हुये भी आपने महाविद्यालय के संचालन में कभी उस कट्टरता से काम नहीं लिया। लड़कियों के धार्मिक जीवन को वैदिक-सिद्धान्तों के अनुसार ढालते हुये भी उनमें सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता तथा उदारता पैदा करने की ओर आपकी दृष्टि सदा बनी रहती थी। आश्रम के मुख्य प्रवेश-द्वार में जो छोटा-सा भवन है, उसमें प्रायः सभी धार्मिक महापुरुषों के चित्र लगाये गये हैं और विद्यालय के लिये आपने जो पाठ्य पुस्तकें तय्यार की हैं, उनमें प्रायः सभी का प्रशंसात्मक उल्लेख किया गया है। यह उदारता और सहिष्णुता विद्यालय की प्रमुख विशेषता है। दूसरी विशेषता यह है कि विद्यालय के वातावरण में धार्मिकता के साथ साथ राष्ट्रीयता को भी अपने विशुद्ध रूप में बनाये रखने का श्री देवराज जी ने निरन्तर यत्न किया। प्रारम्भ से ही उसका किसी भी सरकारी यूनिवर्सिटी के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया। सरकारी अधिकारियों के प्रभाव से उसकी यत्नपूर्वक रक्षा की गई। सन् १९१३ में विद्यालय की आवश्यकतायें कुछ बढ़ चुकी थीं। अपनी जमीन पर अपने भवन बनाने के लिये लगभग तीन लाख रुपये की जरूरत थी। अध्यापकों के वेतन आदि का मासिक-व्यय हज़ार रुपये से ऊपर होता था। लड़कियों से पढ़ाई का खर्च कुछ नहीं लिया जाता था। सब खर्च की पूर्ति जनता की उदारता पर निर्भर थी। आर्यसमाज के प्रति भेद और दण्ड को नीति से काम लेने के बाद सरकार ने

साम-नीति से काम लेना और आर्यसमाज को अपनाना शुरू कर दिया था। उसके द्वारा संचालित संस्थाओं की खुले हाथों सहायता की जा रही थी और इसी निमित्त से बड़े से बड़े सरकारी अधिकारियों ने उन में आना-जाना भी प्रारम्भ कर दिया था। जिन संस्थाओं को भय और सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था, उनकी प्रशंसा करते हुये सरकारी अधिकारी कभी थकते नहीं थे। १९१३ में पंजाब प्रान्त के लफ्टिनएट गवर्नर सर माइकेल ओडवायर विद्यालय का निरीक्षण करने के लिये जालन्धर पधारे थे और उनके जाने के बाद विद्यालय के संचालकों पास मकानात के लिये विशेष सहायता और खर्च के लिये मासिक सहायता देने के सन्देश सरकार की ओर से आने लग गये थे। सरकार इस प्रकार आर्यसमाजियों की स्वतन्त्र वृत्ति को नष्ट करना चाहती थी और सरकारी सहायता का फन्दा डालकर उनको आदर्श-भ्रष्ट करने की उसने चाल चली थी। श्री देवराज जी सरकार की इस कूट नीति को ताड़ गये और आपने सरकारी सहायता की सुनहरी जंजीरों में जकड़े जाने से इनकार कर दिया। उनके साथी सरकारी सहायता स्वीकार करने के लिये उनके साथ सदा ही बहस किया करते थे। वह साधारण प्रलोभन नहीं था। पर, मनस्वी देवराज जी उसमें फंसने वाले नहीं थे। आपने एक दिन भ्रमण करते हुये बड़ी दृढ़ता के साथ भिन्न-भिन्न विचार वाले अपने साथियों से कह दिया—"नहीं,

हम सरकारी सहायता कदापि स्वीकार नहीं कर सकते, हमने भीख मांगना सीख लिया है। एक बड़े दरवाजे पर न जाकर हम हजारों छोटे छोटे घरों का दरवाजा खटखटायेंगे। इस प्रकार हम अपनी लड़कियों की उस आजादी को भी सुरक्षित रख सकेंगे, जिसमें वे स्वतन्त्र पक्षियों की तरह 'हिन्दुस्तान हमारा' के गीत गा सकेंगी और महाराणा प्रताप, गुरु गोबिन्द तथा छत्रपति शिवाजी के नाम का पुण्य स्मरण अभिमान के साथ कर सकेंगी।" इस प्रकार श्री देवराज जी ने 'अपने और संस्था के सत्य एवं सत्व की रक्षा करली।

महाविद्यालय का छोटा-सा अपना बगीचा किसी बड़े शहर के कम्पनी बाग से कम शानदार नहीं है। छोटी-छोटी सड़कों, पगडन्डियों, पार्कों आदि के नाम नेताओं के नाम पर रखे गए हैं। इस से वहां का सारा वातावरण ऐसा राष्ट्रीय बना दिया गया है कि लड़कियां हर एक सांस के साथ बिना बताये और बिना सिखाये स्वयं ही देशभक्ति का पाठ पढ़ती रहती हैं। वहां की लड़कियों ने भारत-माता, राष्ट्रीय-पताका तथा राष्ट्रीय-नेताओं की स्तुति और वन्दना में जो गीत या भजन बनाये हैं, उन में से बहुत से पंजाब के घरों और वहां की सार्वजनिक समाजों में गाये जाते हैं।

महाविद्यालय की धार्मिकता अथवा राष्ट्रीयता साम्प्रदायिकता से एक दम रहित है। वहां के रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा और

वातावरण में साम्प्रदायिकता की हलकी-सी भी गन्ध नहीं पाई जाती है। इसी से महाविद्यालय ने देश के सभी विचारों तथा सभी सम्प्रदायों के नेताओं को अपनी ओर आकर्षित किया है और उन सभी ने समान रूप से उस की सराहना की है। पंजाब की साम्प्रदायिकता में कुछ ऐसा ज़हर है कि वहां रहते हुए उस से बचना असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है। सांभर की उस झील में सोने को भी नमक बनते देर नहीं लगती। श्री देवराज जी के ही व्यक्तित्व का यह पुरुषार्थ था कि उन्हों ने अपनी संस्था को उस से बचाये रखा और आर्यसमाज के उस आदर्श, भावना तथा कल्पना को दाग नहीं लगने दिया, जिस को सम्मुख रख कर उस के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने उस की स्थापना की थी। स्वर्गीय राजर्षि गोखले, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, महाराज गायकवाड़, राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद जी, भारतभूषण मालवीयजी, स्वर्गीय प्रेजिडेन्ट पटेल, श्री श्रीनिवास शास्त्री, भारतकोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू, आचार्य कर्वे, श्रीयुत अणे, डा० सैफुद्दीन किचलू और सीमाप्रान्त के नेता लाल बादशाह आदि ने महाविद्यालय की एक-ही-सी प्रशंसा की है और स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में उस को प्रमुख, अद्वितीय, अद्भुत, तथा विलक्षण बताया है। शिक्षा-विज्ञ लोगों, राजा महाराजाओं और सरकारी पुरुषों की प्रशंसात्मक सम्मतियों से भी महाविद्यालय की दर्शक-पंजिका भरी हुई है।

लोकमत

उनमें से कुछ सम्मतियों का आशय इसलिये यहां दिया जा रहा है जिससे पता लग जाय कि श्री देवराज जी का जीवन-कार्य कितना लोकप्रिय था और उसको सुप्रतिष्ठित नेताओं द्वारा कैसा आदर प्राप्त हुआ था। सन १६०७ में स्व० श्री गोखले ने महाविद्यालय का निरीक्षण करने के बाद लिखा था:— "जो कुछ मैंने यहां देखा, उस सबसे मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। यहां बहुत सराहनीय कार्य किया जा रहा है। मैं संस्था की सब प्रकार की सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।" सर लल्लूभाई सांवलदासने सन् १६१५ में लिखा था — "महाविद्यालय न केवल पंजाब में किन्तु समस्त भारत में अपनी सरीखी एक ही प्रमुख सँस्था है। ....जिन्होंने इसकी स्थापना की है और जो इसका संचालन कर रहे हैं, उनमें श्री देवराज जी के नाम का उल्लेख करना आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर के १६०५ के कथन के अनुसार आप लाखों में एक हैं और सब देशवासियों की बधाई तथा धन्यवाद के अधिकारी हैं अनेक श्रेणियों की लड़कियों को मैंने देखा। वे प्रसन्न, स्वस्थ और होशियार हैं। मुख्याध्यापिका क्षीण स्वास्थ्य की होने पर भी उन पर निरन्तर माता की सी निगरानी रखती हैं। उन सब में परस्पर बहिनों का-सा प्रेम है। भारतीय गायन विद्या सस्था

का मुख्य विषय है, जिसमें वे विशेष प्रवीण हैं। उससे सम्बद्ध सब संस्थाओं की व्यवस्था भी बहुत स्वच्छ और सुन्दर है। मैं संस्था के संचालकों को उनके उद्योग में पूर्ण सफल हुआ देखना चाहता हूं जिससे वे भारत के महिला समाज का उत्थान करने में समर्थ हो सकें।"

बड़ौदा-नरेश ने लिखा था कि "यह संस्था वास्तव में समाज की बहुत बड़ी सेवा कर रही है। यदि देश में इस और मि० कर्वे की संस्था सरीखी कई संस्थायें स्थापित हो सकें, तो भारत के महिला-समाज की और उसके परिणाम-स्वरूप सब देश की उन्नति का दिन दूर न रहे।" डा० सैफुद्दीन किचलू ने १९१९ में लिखा था— "यह संस्था भारत में अद्वितीय है। मुझ को पूरा निश्चय है कि जो शिक्षा यहां दी जा रही है, वह केवल गृहस्थ-सम्बन्धी काम काज के लिए ही उपयोगी न होगी किन्तु उनके हृदयों में देशभक्ति की उस भावना को भी भर देगी, जिस की देश को इस समय सब से अधिक आवश्यकता है। श्रीमती लज्जावतीदेवी का व्यक्तिगत जीवन, जो संस्था की आचार्या हैं और बड़े त्याग तथा योग्यता के साथ कार्य कर रही हैं, इस प्रकार की शिक्षा का सर्वोत्तम उदाहरण है। महात्मा देवराज जी की भी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता, जिन के हृदय में महा-विद्यालय की स्थापना का विचार सब से पहले पैदा हुआ था, जो अपने विचार को कार्य में परिणित करने में सदा संलग्न

रहते हैं और जिन्होंने अपना कीमती जीवन लड़कियों की भलाई में लगा दिया है। स्त्री-शिक्षा के प्रेमियों को कन्या-महाविद्यालय के आदर्श का अनुभव करना चाहिये और देश के कोने २ में ऐसी ही संस्थायें स्थापित करनी चाहियें।" स्व० प्रेजीडेन्ट पटेल और बड़ौदा-राज्य के अवसर प्राप्त जज वयोवृद्ध श्री तैयब जी ने १९२२ में अपनी सयुक्त सम्मत्ति में लिखा था—"हमको सब से अधिक प्रसन्नता उस राष्ट्रीय वातावरण को देख कर हुई, जिसमें लड़कियों को रखा जाता है। यह केवल इस लिये सम्भव है कि संस्था सरकार से कुछ सहायता नहीं लेती है और उसके नियन्त्रण से स्वतन्त्र है। जो शिक्षा दी जाती है वह सर्वांश में अत्युत्तम है।.........भले ही यह संस्था देश में सर्वोत्तम न हो किन्तु सर्वोत्तम संस्थाओं में यह अन्यतम है और बढ़ावा देने योग्य है। १९२७ में श्री सत्यमूर्ति ने लिखा था कि "यह मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं कि विद्यालय देखने का अवसर मुझको प्राप्त हुआ। बहुत समय से स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में मेरे जो विचार हैं उनको मैंने यहां कार्य में परिणत होते हुए देखा। विद्यालय के कार्य का विशेषतः खुले मैदान में श्रेणियों के पढ़ाने की व्यवस्था का, सादगी एवं प्रसन्नता का, जिससे अध्यापक तथा शिष्य परस्पर मिलते-जुलते हैं और शुद्ध तथा पवित्र वातावरण का, जिसमें वे रहते हैं—मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ा।'

पेशावर के एम० लाल बादशाह ने १९३२ में लिखा था कि "इस संस्था को देखकर मैं इतना प्रभावित हुआ हूं कि भारत की स्वतन्त्रता की शीघ्रतम प्राप्ति के लिये मैं उसको अपना मिशन बनाकर भारत में सर्वत्र उसका प्रचार करता हूं। भावी समस्या को हल करने का एकमात्र यही उपाय है। मैं इस संस्था को भारत की स्वस्थ और सुन्दर सन्तति पैदा करने का प्रधान साधन समझता हूं।" राष्ट्रपति श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद जी ने लिखा है—"मैं इसे देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और इसकी प्रतिदिन उन्नति की कामना मैं हृदय से करता हूं। इस प्रकार की कोई संस्था मेरे प्रान्त में नहीं है और न मैंने कहीं भी उत्तर भारत में देखा है। स्त्री-शिक्षा बड़े महत्व का प्रश्न है और इसमें आवश्यक है कि शिक्षा के साथ साथ अपनी सभ्यता और संस्कृति भी बची रहे, उसके प्रति श्रद्धा और प्रेम हमारी बालिकाओं के हृदयमें उसी प्रकार कायम रहे, जैसे आज है। यह सब कन्या-महाविद्यालय कर रहा है। अतएव इसके प्रति मेरी श्रद्धांजलि आप स्वीकार करें।"

श्री देवराज जी के स्वर्गवास के बाद महाविद्यालय का कार्य फिर से श्रीमती कुमारी लज्जावती जी ने संभाल लिया है। आप पहिले भी बड़ी योग्यता और तत्परता के साथ उसके सञ्चालन का कार्य करती रही हैं। स्वास्थ्य के गिर जाने से आप को विवश होकर उस से छुट्टी ले लेनी पड़ी थी। पर,

अब गिरे हुए स्वास्थ्य की चिन्ता त्याग आप ने अपनी प्रिय संस्था के अनुराग से खिंच कर फिर उस के संचालन के गुरुतर कार्य-भार को अपने कन्धों पर उठा लिया है। यह विश्वास और भरोसा रखना चाहिए कि महाविद्यालय उत्तरोत्तर अपने आदर्श की ओर अग्रसर होगा और अपने गौरव की रक्षा करते हुए उस ध्येय को पूर्ण करेगा, जिस से प्रेरित होकर उसके संस्थापक ने उस की स्थापना की थी और निरन्तर पचास वर्षों तक लाडली सन्तान की तरह उसका लालन-पालन किया था।

४.

साहित्य

जिस साहित्य का श्री देवराज जी ने निर्माण किया है, उस का एक विशेष लक्ष्य और हेतु है। १८८६ में जब 'महाविद्यालय' की स्थापना की गई थी, तब हिन्दी में साहित्य का इतना अभाव था कि लड़कियों के लिये तो क्या, लड़कों के लिये भी पाठ्य-पुस्तकों का कहीं पता नहीं था। महाविद्यालय के प्रारम्भ से ही उसकी सम्पूर्ण शिक्षा का माध्यम हिन्दी है और वैसे भी हिन्दी वहां के शिक्षा-क्रम का प्रधान विषय है। यह कोई साधारण कठिनाई नहीं थी। उस अभाव की पूर्ति के लिये छोटी-बड़ी गद्य-

पद्य की कोई तीन दर्जन पुस्तकें आपने लिखी होंगी, जिनमें से कइयों के आठ-दस संस्करण हो चुके हैं और जिनका प्रचार पंजाब से बाहर भी बिना किसी उद्योग एवं आन्दोलन के आप ही आप उनकी उपयोगिता के कारण हुआ है। बच्चों में सादगी, सरलता, पवित्रता, धार्मिकता, राष्ट्रीयता आदि की भावना पैदा करके उन के चरित्र-निर्माण की जिस दृष्टि से वह साहित्य तैयार किया गया है, उस में आप को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। कदाचित् आप का तय्यार किया हुआ साहित्य वैसा सरस न जान पड़े और आपकी कविता में भी सम्भवतः वैसा सौन्दर्य न दीख पड़े, किन्तु भाव इतने शुद्ध ऊँचे तथा पवित्र हैं कि बिना किसी संकोच के उसको बच्चों के हाथों में दिया जा सकता है। छोटे-छोटे बच्चों को खेल-कूद के साथ-साथ अक्षर-बोध से प्रारम्भ करके लिखने-पढ़ने में खूब अभ्यस्त करने के लिये आपका साहित्य विशेष लाभदायक है और बच्चों का चरित्र-निर्माण करने में भी उससे पूरी सहायता मिल सकती है। 'सन्त वाणी' सम्भवतः आपकी सबसे अधिक सुन्दर और उपयोगी कृति है, जिसका आदर कभी साधु-सन्तों की वाणियों के समान होगा। उस में ३५४ पद्य लिखे गये हैं। उनमें सात्विक भावों के जो मोती पिरो गये हैं, वे लेखक के गम्भीर आशय, उच्च भावना, उदार कल्पना तथा सात्विक जीवन की प्रतिछाया हैं।

५.

व्यक्तित्व

श्री देवराज जी के महान् व्यक्तित्व की साक्षी तो इसी एक बात मे मिल जाती है कि जनता ने लाखों रुपया आपको दिया और निःसंकोच होकर तब अपनी लड़कियों को आपके सिपुर्द किया, जब कि उनको हवा तथा रोशनी से भी बचा कर रखा जाना आवश्यक समझा जाता था। सर्वसाधारण का यह विश्वास और प्रेम हर किसी को प्राप्त नहीं होता। त्याग, तपस्या, साधना और सेवा से उस को प्राप्त किया जाता है। श्री देवराज जी जनता की सेवा की इस कसौटी पर इस प्रकार पूरे

उतरे थे कि उसके विश्वास को आपने पूर्ण रूप में प्राप्त किया था और उस विश्वास में आपने आजन्म कुछ भी कमी नहीं आने दी थी। जीवन की अन्तिम घड़ी तक — लगभग आधी शताब्दी के लम्बे समय तक — उसको आपने निरन्तर जिस कर्तव्यपरायणता के साथ निबाहा, वह भी आपके व्यक्तित्व की एक विशेषता है। संसार की मोह-माया से भरी हुई आकांक्षाओं से दूर और धनधान्य की विलासितापूर्ण वासनाओं से अलिप्त रह आपने समाधिस्थ योगी के समान एक ही ध्येय की पूर्ति में लीन हो स्थिर मनोवृत्ति का जो परिचय दिया, वह आपके जीवन की एक असाधारण विशेषता है। ऐसी तत्परता और तल्लीनता विरले ही महापुरुषों के जीवन में देखने को मिलती है। ईस्वी सन् १८८५ के बाद देश में भयानक उथल-पुथल पैदा हुई, कई बार राजनीतिक वातावरण अत्यन्त उत्तेजित हो उठा और समय-समय पर धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं ने भी जोर पकड़ा, किन्तु श्री देवराज जी अपनी ही धुन में मस्त रहे। आपने दायें-बायें, आगे-पीछे, इधर-उधर न कभी देखा और न ध्यान दिया। राजनीतिक-असंतोष, सामाजिक-संघर्ष, धार्मिक-कलह और आर्थिक-संकट की कितनी ही लहरें, इन पचास वर्षों में उठीं, पर वे सब आपके दृढ़ संकल्प की उस चट्टान को न हिला सकीं, जिस पर 'महाविद्यालय' की स्थापना की गई थी। वे उठीं और उस चट्टान के साथ टकरा कर वापिस लौट गईं।

ऐसा धीर-वीर, कार्य-कुशल, कर्तव्य-परायण, कृत-संकल्प, धुन का पक्का तथा लगन का पूरा व्यक्तित्व किस हृदय में स्फूर्ति, शक्ति, तेज और साहस पैदा नहीं कर सकता ?

मनुष्य जिस जीवन को घर-गृहस्थी की नून-तेल-लकड़ी की समस्या के हल करने में ही समाप्त कर देता है और अन्त में उस नश्वर शरीर के साथ साथ जीवन की सब आकाँक्षाओं से भी हाथ धो बैठता है, उसी जीवन में श्री देवराज जी ने कितना महान कार्य कर दिखाया ? 'महाविद्यालय' सरीखी महान संस्था की स्थापना ही नहीं की किन्तु उसके संचालन, नियन्त्रण और प्रबन्ध का सब काम भी आपको ही करना पड़ा। उसके शिक्षक, अध्यापक, अधिष्ठाता आदि भी सब आप ही थे। आप ही ने उसका शिक्षा-क्रम नियत किया और पाठ्य-पुस्तकों के अभाव की पूर्ति भी आपने ही की। उसके लिये अनुकूल आन्दोलन करने और प्रतिकूलता को दूर करने का सब कार्य भी आपने अकेले ही किया। जमीन को साफ़ करके उसमें बीज बखेरने, अंकुर फूटने पर कोमल पत्तियों की आँधी, तूफान, धूप तथा पाले से रक्षा करने, बढ़ने पर उनको सींचने और बिना खिले ही कलियों को मुरझाने से बचाने आदि का सब काम आपने स्वयं किया। परीक्षण की प्रारम्भिक अवस्था से सफलता की अन्तिम चोटी के शिखर पर संस्था को पहुंचाने का सब श्रेय अकेले आप को ही है।

ऐसी महान एवं सफल संस्था के संस्थापक या प्रवर्तक के नाते ऐसे महान कार्य के सम्पादक होने पर भी आपके स्वभाव में अहंकार का लवलेश भी नहीं था। ऐसे मिलनसार, सरल, सहृदय और निरभिमान थे कि एक बार रास्ते चलते हुये भी जिस किसी से मिल लेते थे, उसके हृदय पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप सदा के लिये लगा देते थे। आपसे मिलने वाला आपको कभी भूल नहीं सकता था। सात्विकता की आप मूर्ति थे। विद्यालय की छोटी बड़ी लड़कियों के साथ ही नहीं, किन्तु बाहर के छोटे बड़े स्त्री-पुरुषों के साथ भी आप निःसंकोच होकर मिलते थे। आप में बनावट या दिखावा बिलकुल भी नहीं था। भीतर बाहर आपका एक-सा ही स्वरूप था। व्यवहार भी अत्यन्त स्पष्ट और खुला था। बातचीत में मिठास वैसी ही थी, जैसी स्पष्टवादिता थी।

महाविद्यालय की छोटी बड़ी सब बालिकायें आपको चाचा जी कहती थीं। जालन्धर में ही नहीं, किन्तु समस्त पंजाब में आप इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। शिक्षित महिला समाज आपको इसी नाम से जानता और पहिचानता है। यह नहीं कहा जा सकता कि आपने स्वयं इस नाम को पसन्द किया था या आपकी शिष्याओं ने आपको यह नाम दिया था, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आपका यह नाम आपकी सरलता, सादगी, मिलन सारिता और सहृदयता का द्योतक है में। आप सजह

अपने लिये आचार्य, पिता या गुरू आदि किसी बड़े गौरवास्पद शब्द का प्रयोग कर या करवा सकते थे, किन्तु उन सब शब्दों को छोड़ कर 'चाचा जी' शब्द को अपने लिये काम में लाना कितना सरल और स्वाभाविक मालूम होता है। महाविद्यालय के मकानों की दीवारों से ही नहीं किन्तु चारों ही ओर से, यहां तक कि वहाँ के बगीचे मे लगे हुये पौदों के फल-फूल तथा पत्तियों में से भी 'चाचा जी' की ही ध्वनि प्रतिध्वनित होती थी। लड़कियों की तरह वे मकान और पौदे भी आपकी ही कठोर तपस्या और एकनिष्ठ साधना के परिणाम थे। उनमें भी आपकी ममता व्याप रही थी। वे भी सिर ऊपर उठाये आपके त्याग तथा कष्ट-सहन की साक्षी दे रहे थे। उनकी एक-एक ईंट को आपने चुना या चुनवाया था और एक-एक पौदे को आपने ही रोपा या रोपवाया था।

घटना साधारण है, किन्तु उसका अर्थ असाधारण है। एक दर्शक महाविद्यालय देखने के लिये पधारे तो श्री देवराज जी लड़कियों को साथ ले बगीचा सुधारने में लगे हुये थे। उन्होंने आकर सहज से पूछा कि देवराज जी कहां हैं? जब उसको बताया गया कि जिस व्यक्ति को वह माली समझ रहा था, वही वे है जिनसे वह मिलना चाहता था, तो सहसा उसको विश्वास न हुआ। वह यह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि घुटनों तक धोती चढ़ाये हुये श्री देवराज जी हाथ मे खुर्पी या

फावड़ा ले बगीचे में माली का भी काम करने होंगे ? लड़कियों के जीवन को बढ़िया सांचे में ढालने वाला पौदों का भी साज-शृंगार करना जानता होगा ? कलम कागज की दुनियां में विचरने वाला धूल-मिट्टी में भी हाथ सानता होगा ? वह यह नहीं जानता था कि संस्था के संस्थापक एवं संचालक व्यक्ति को बीज की तरह अपने जीवन को जमीन में गला देना चाहिये । माली के रूप में श्री देवराज जी को सामने खड़ा देखकर वह निस्तब्ध और अवाक् रह गया। उनके जीवन की ऐसी सैकड़ों घटनाओं का संग्रह किया जा सकता है, जो कुतुहलपूर्ण हैं और शिक्षाप्रद भी। ऐसी घटनायें ही महापुरुषों के जीवन को असाधारण बना देती हैं।

नीति-शास्त्र में उद्योगी पुरुष तीन प्रकार के बताये गये हैं। अधम उनको कहा गया है, जो बाधा तथा असफलता के भय से सदा संकल्प-विकल्प में पड़े रहते हैं और कार्य शुरू करने का कभी साहस नहीं करते। मध्यम उनको जो काम शुरू करके विघ्न-बाधा उपस्थित होने पर उसको बीच में छोड़ देते हैं और उत्तम उनको जो सैकड़ों विघ्न-बाधाओं के रहते हुये भी अपने कार्य में सफलता प्राप्त होने तक लीन रहते हैं। कैसी भी विघ्न-बाधा, विरोध या हानि उनको अपने कार्य से विचलित नहीं कर सकती। श्री देवराज जी निस्सन्देह उत्तम श्रेणी के उद्योगी महापुरुष थे। आपने जिस काम को हाथ में लिया उसको पूरा

करके सांस लिया। महाविद्यालय कितनी असफलताओं के बाद सफलता के मार्ग पर अग्रसर हुआ? कितनी कठिनाइयों और विरोध का उसके लिये आपको सामना करना पड़ा? आपकी यह तन्मयता एवं तल्लीनता अनुकरणीय है। सार्वजनिक जीवन के किसी भी क्षेत्र में काम करने वाले के लिये आपका जीवन आदर्श है। किसी भी संस्था का संस्थापक, संचालक, संरक्षक, शिक्षक, अध्यापक, अधिष्ठाता या आचार्य आपके जीवन को अपने लिये 'मोडल' बना सकता है। देश की किसी भी प्रकार की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक सेवा में अपने को लगाने वाला भी आपके जीवन से कुछ न कुछ सीख सकता है। लेखक, सम्पादक, उपदेशक, प्रचारक या भजनीक भी आपका आदर्श अपने सामने रख सकता है। समाज-सुधारक को भी आपके जीवन से विशेष स्फुर्ति मिल सकती है। अलौकिक धैर्य, अपूर्व साहस, अटल श्रद्धा, अढ़ल विश्वास, अटूट लगन, दृढ़ निश्चय, कार्य-कुशलता, कर्त्तव्य-परायणता, अपने ध्येय के साथ तन्मयता, धुन का पक्कापन, सादगी, सरलता, मिलनसारिता और सहृदयता आदि आपके सद्गुण, मृत-व्यक्ति में भी जीवन, जागृति, स्फूर्ति, चैतन्य और उत्साह का संचार कर सकते हैं। ऐसे कर्मशील महान् जीवन के लौकिक व्यक्तित्व और पार्थिव देह का ७२ वर्ष की लम्बी आयु के बाद १७ अप्रैल १९३५ की अर्ध-रात्रि को हृदय की गति बंद होजाने से एकाएक अस्त हो

गया। उसका अलौकिक व्यक्तित्व और अमर-कीर्ति यावच्चन्द्र-दिवाकरौ बनी रहेगी और देशवासियों में नवजीवन का संचार करती हुई पथ-प्रदर्शक का काम करती रहेगी।
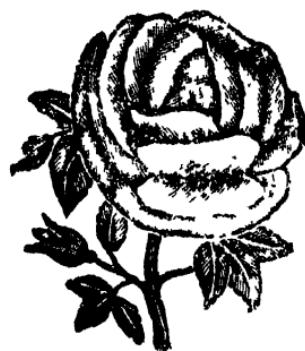
स्त्री शिक्षा के प्रवर्तक

स्वर्गीय श्री लाला देवराज जी

का

जीवन परिचय

आपने पढ़ लिया।

—:०:—

इस चरित्र-माला में निम्न उपयोगी पुस्तकें भी यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित की जायेंगी—

—आर्यसमाज के शहीद—सचित्र।

—आर्यसमाज के संन्यासी—सचित्र।

—आर्यसमाज के निर्माता—सचित्र।

संचालक—

सरस्वती-सदन

मसूरी (संयुक्तप्रान्त)